हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर-सीरीजका ९१ वाँ ग्रन्थ

अशोक वन

और

अनारकली

तेलुगूके सुप्रसिद्ध लेखक श्री मुद्दु कृष्णके
एकाङ्की नाटकोंका अनुवाद

अनुवादकर्त्ता—
ब्रजनन्दन शर्मा

प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४

प्रथम बार
जून, १९३७
मूल्य नौ आने

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केळेवाडी गिरगाव बम्बई

अनुवादकर्त्ताकी ओरसे

जब लोग कहते हैं कि हिंदीमें अनुवादोंकी बाढ़ आगई है,—अब अनुवादोंकी जरूरत नहीं है, तब मैं सोचने लगता हूँ कि क्या यह बात सच है ? क्या हिंदी साहित्य इतना समुन्नत हो गया है कि अब अनुवादोंकी जरूरत नहीं ? या किसी भी समुन्नत साहित्यने अनुवादोंकी खिड़की बन्द कर ली है ? फिर हिंदीके महारथी ऐसा क्यों कहते हैं ? और हिन्दीमें अनुवाद हुए ही कहाँ हैं ? यह हाय तोबा, तो बगलाके थर्ड क्लास उपन्यासोंके अनुवादके कारण ही मचा हुआ है । हिंदुस्तानके भिन्न भिन्न साहित्य तो अभी हिन्दी कलेवरमें आये ही नहीं हैं, राष्ट्रभाषाका दावा करनेवाली हिंदी अभी दक्षिणापथके साहित्यसे तो सर्वथा अनभिज्ञ ही है । संस्कृतसे भी पुरानी तमिल भाषासे कितने रत्न आये हैं हिन्दीमें ? Italian of the East (तेलुगू) से कितने नमून हिन्दी पाठकोंके सामने आये हैं ? कन्नड़ साहित्यकी कौन-सी विभूति हिंदीकी शोभा बढ़ा रही है ? कहना पड़ेगा, कुछ भी नहीं । फिर अनुवादोंके प्रति यह उपेक्षा क्यों ?

आज मैं एक प्रकारके गर्वका अनुभव कर रहा हूँ कि शायद मैं ही वह प्रथम व्यक्ति हूँ, जो पहले पहल हिंदी पाठकोंके सामने दक्षिणी साहित्यकी एक उत्कृष्ट रचना रख रहा हूँ* । पर, प्रथम प्रयास होनेके कारण यह भय भी हो रहा है कि कहीं कालम्बसकी तरह मैं हिंदुस्तानके बदले अमेरिका तो नहीं पहुँच जाऊँगा ! यहाँके हिंदी-तेलुगूके जानकर मित्रोंने विश्वास दिलाया है कि मैं ठीक रास्तेपर ही हूँ । पर, यह बात कहाँतक ठीक है, यह निर्णय विज्ञ पाठकोंके ऊपर है ।

---

* 'तामिल-वेद' सस्ता साहित्यमण्डलने प्रकाशित किया है, परन्तु वह अँग्रेजीका अनुवाद है । मेरे अग्रज प० रामानद शर्माने तेलुगूके श्रेष्ठ उपन्यास मालपल्ली'का अनुवाद किया है, पर वह प्रकाशककी प्रतीक्षामें यों ही पड़ा है ।

इस पुस्तिकाके मूल लेखक श्री मुद्दु कृष्णजी तेलुगूके नव्य लेखकोमे हैं और इस बातका प्रमाण उनकी रचना ही दगी। आप नवयुवक हैं, 'ज्वाला' नामक एक तेलुगू मासिक पत्रिकाका सम्पादन भी कर चुक हैं। आपने अभी बहुत नहीं लिखा है पर, जो कुछ लिखा है, अनमोल है। आपका स्वभाव बडा ही सौम्य है पर, आपके विचार बड़े उग्र हैं। सचमुच आपकी लेखनी ज्वाला उगलती रहती है।

तेलुगूक आधुनिक लेखकोंमे Art for Art's sake वाले ही अधिक हैं। पर मुद्दु कृष्ण इसके अपवाद हैं। आपके लेख और कहानियाँ समाजके हृदयपर ऐसी चोट करती हैं कि पुरातन समाज या पुरातन विचारोवाला नव्य समाज तिलमिला उठता है। निष्ठुर डाक्टरकी तरह समाजक रूढ़िगत भावोंकी चीर फाड़ करनेमे आप सिद्ध हस्त हैं।

यह पुस्तिका भा उसीका एक नमूना है। किस कला पूण ढगसे पुरातनको नूतनमे ढाला है लेखकने,—सा देखनकी ही वस्तु है। 'प्रेम' का जा रूप लेखकन निरूपित किया है वह भले ही लागोका युरोपीय मालूम पड, पर है वह मानवीय और शायद आदर्श भी। इस पुस्तिकामें तीन भाग-से हैं। एक 'अशोक वन', दूसरा 'अनारकली' और तीसरा लेखककी 'कैफियत'। 'अशोक वन' मे जो उग्र सामाजिक विचार और कला है, वह ता है ही, उसके साथ साथ और भी एक बात है जो हिन्दी पाठकोको नइ-सी प्रतीत होगी। वह है रावणका चरित्र। हम रावणके जिस चरित्रको देखने सुननेके आदी हो गये हैं, उससे यह चित्र सवथा भिन्न है। यह रावण वाल्मीकि और तुलसीके रावणसे अपना बिल्कुल साम्य नही रखता। दक्षिणके कुछ आधुनिक विद्वानोकी राय है कि लकावासी दर असल वैसे नही थे, जैसा कि सस्कृत या अन्य भाषाके कवियो और लेखकोने उन्हे चित्रित किया है। ऐसे विकृत चरित्र गढ़नेकी जडमे आर्य और अनार्यकी भावना काम कर रही थी। इस लेखकने भी 'कैफियत' मे वही बात सामने रक्खी है।

परन्तु, वाल्मीकिके ऊपर जिस पक्षपातका आरोप लेखकन किया है, उससे खुद बचनकी पूरी कोशिश की है। द्रविड़ पक्षपातक कारण आर्य राम और सीताका चरित्र दूषित नहीं किया है, वरन्, और भी उज्ज्वल बनानेका प्रयत्न किया है। हाँ, इस लेखकका माप दण्ड वाल्मीकि या तुलसीके माप दण्डसे जरूर

भिन्न है। यह बिल्कुल आधुनिक है, पर इसमें गुप्तजीकी आधुनिकता नहीं है। यह रामको आधुनिक ' मनुष्य ' रूपमें चित्रित करनेका सफल प्रयास है।

'कैफियत'मे लेखकने रामपर जिस निर्दयतासे आक्रमण किया है, वह निर्दयता खुद रामका चरित्र चित्रित करनेमें नहीं दिखाई है। वरन् बहुत सहृदयतासे काम लिया है। सिर्फ नाटकीय भाग पढ़ जानेपर तो यह सन्देह भी नहीं रहता कि लेखक रामके प्रति ऐसे भाव रखता है।

' कैफियत 'मे लेखकने अपने परिवर्तनों और विचारोंको तर्क और प्रमाणों द्वारा उचित साबित करनेका प्रयास किया है। उसमें लेखकने अपने विचार रक्खे हैं। हो सकता है कि वे विचार सब लोगोंको मान्य न हो। पर लेखककी कला परखनेके वास्ते ' कैफियत ' पढ़नेकी कोई विशष आवश्यकता नहीं है। हाँ, आर्य अनार्यकी भावनाका, जो दक्षिणके कुछ साहित्यिकोंमें जड़ जमाये बैठी है, आभास जरूर इस कैफियतमे मिल जाता है।

' अनारकली ' लेखककी एक सुन्दर कलाकृति है जिसमे विचारोका भी काफी प्राधान्य है। इसका तेलुगु पाठकोंमें बड़ा सम्मान है। तेलुगूमें यह अलग पुस्तिका रूपमे छपी है। इसका हिन्दी अनुवाद मैंने ' हस ' में भी प्रकाशित कराया था। प्रकाशक महोदयकी रायसे वह भी इसीमें जोड़ दी गई है।

यह तेलुगू भाषाका अनुवाद है। तेलुगू द्रविड़ शाखाकी है। इसकी वाक्य योजना बगला या मराठीकी तरह हिन्दीसे मिलती-जुलती नहीं होती, अत अनुवादमें भी ज्यादा कठिनाई पड़ती है। इस अनुवादको मैं शुरू भी नहीं करता यदि तेलगूक श्रेष्ठ कवि और लेखक मित्रवर शिवशकर शास्त्री मुझे इस ओर प्रोत्साहित न करत। उन्होंने ही लखकसे परिचय कराकर ये पुस्तके दीं और अनुवाद हो जानपर एक बार सुन भी गये। इसलिए, इसका श्रय बहुत-कुछ उन्हींको है।

यदि यह अनुवाद पाठकोको पसन्द आया और प्रकाशकोंकी कृपा रही, तो तेलुगूके और भी सुन्दर तथा सुरभित सुमन हिन्दी जननीको भेंट करनेकी कोशिश बराबर जारी रखूँगा।

हिन्दी महा विद्यालय
तेनाली (आन्ध्र)
६-५-३७

व्रजनन्दन शर्मा

समर्पण

जिन्होंने मुझमें साहित्यिक अभिरुचि पैदा की, तेलुगूके ऑगनमें लाकर रख दिया, और ' जो कुछ मैं हूँ ' उसे बनानेमें अपना 'बहुत कुछ' व्यय किया उन्ही

' भाईजी '

प० रामानन्द शर्मा ' प्रेमयोगी ' के

चरणोंमे यह रचना,—यद्यपि इसमे 'मेरा अपना' बहुत थोड़ा है, सभक्ति अर्पित है।

ब्रजनन्दन

अशोक वन

प्रथम दृश्य

[प्रात काल । मिथिलापुरी । विशाल उद्यान । तरह-तरहके वृक्ष और लतायें इस तरह सजी हैं मानो आज्ञानुसार ही बढ़ी और फैली हो । दो सुन्दर काश्मीरी वृक्षोंके बीचमें सगमर्मरके चबूतरपर सीता बैठी है। एक सखी पास खड़ी बात कर रही है, दूसरी शीघ्रतासे प्रवेश करती है—]

दू० स०—राजकुमारी, लकापति आना चाहते है !

सीता—अच्छा, बुलाओ ।

(सखीका प्रस्थान)

[रावणका प्रवेश । २५ वर्षका युवक-सा । शरीर और मुख मडल गाभीर्यका सूचक । सीता उठकर स्वागत करती है।]

सीता—यह आसन—

रावण—अच्छा ।

(पहली सखी काश्मीरी वृक्षोंकी छायासे दूर हट जाती है।)

सीता—लकासे यहाँ तककी यात्रा बड़ी कष्टकर है !

रावण—नहीं, प्रयोजन-सिद्धिके लिए यह कोई बड़ा कष्ट नहीं।

सीता—(मुस्कुराकर) साहसी हो, इसलिए इसका ध्यान नहीं है।

रावण—सो बात भी नहीं है।—उत्साह आतुरतासे मिलकर दूरको समीप करनेमें समर्थ हो सका है।

सीता—इतना आतुरता क्यो ?

रावण—महाराज जनककी आज्ञा शिरोधार्य करने और अपने भाग्यकी परीक्षा लेने—

(सीता काश्मीरी वृक्षोकी ओर देखती है।)

रावण—शिष्टाचारके अनुसार तुम्हारी स्वीकृति ही लेने नही आया हूँ, वरन्, आया हूँ अपना हृदय खोलकर साफ साफ दिखाने।

सीता—क्या ?

रावण—बिना किसा दुराव-छिपावके कहता हूँ, क्षमा करना। प्रेम-ज्वालासे धग् धग् जलनेवाले इस हृदयको जो शातल कर सके उसकी खोजमे सारा विश्व छान डाला। पर इस अभागेको कही उस मूर्तिका दर्शन न हुआ।—गत वर्ष जनक महाराज नगरको नये ढँगसे अलकृत कर रहे थे। 'पुष्पक' पर काश्मार जाते हुए यह नगर भी देखनेकी इच्छा हुई। विमान इसी नगरके ऊपरसे जा रहा था। मै हाथमे दूर-दर्शक यत्र लिये नगरका छटा देख रहा था। अकस्मात तुमपर दृष्टि पड गई। तुम भी शायद सौधपरसे शहरकी सजावट देख रही थीं। मै मुग्ध रह गया। तुम्हारा स्वरूप हृदयमे अकित हो गया। इतनेमे तुमने ऊपर देखा। मुझे खयाल आया कि यह तो अन्त पुर है और तुरत उधरसे दृष्टि फेर ली।

सीता—(आश्चर्यके साथ) क्या ? गत आयुध-पूजाके समय उस रग-बिरगे विमानपर—

रावण—हॉ, हाँ, मै ही था ।

सीता—यह सोचकर कि कोई विदेशी उत्सव देखने आया है, दासीको भेजा भी था,—नेत्र-शालासे आह्वान करने । लेकिन—

रावण—अरे, मै समझ न सका । अन्त पुरपर इस तरह दृष्टिपात करना उचित न समझकर मै आगे बढ़ गया । लेकिन, उसी क्षणसे मुझे न मालूम क्या हो गया । सुध-बुध न रही । वहाँसे काचनजधाकी चोटीपरसे होता हुआ त्रिविष्टपपुर पहुँचा । वह दिन और रात वहीं बीती । इतने दिनसे मै जिसकी खोजमे था वह मिल गई, इस आनन्दने मुझे उन्मत्त बना दिया । तबसे आजतक प्रतीक्षा-निरत बैठा था । यह शुभ दिन,—यह स्वयवर—

सीता—(एक लम्बा साँस लेकर) सखा, आसन्न ले आ ।

रावण—(रोमाचित होकर मुखपर आये हुए स्वेद-कणोंको पोछता हुआ) सीता, अपना हृदय खोलकर तुम्हे दिखाने आया हूँ । लेकिन, घबराहटके कारण कुछ सूझता ही नहीं कि क्या कहूँ ! क्षमा करके—

सीता—रावण, मुझे पूज्य पितापर पूर्ण विश्वास है । उनकी आज्ञा ही मेरे पथका ध्रुव-तारा है । कल ही तो स्वयवर है । (उसास लेती है)

रावण—(गद्गद स्वरसे) सीता, मुझे वचन देती हो ?

सीता—समझ गई ।

रावण—कृतार्थ हुआ ।

सीता—रावण, कल—

(सखी पात्रमें आसव भर सीता और रावणको देकर अलग खड़ी रहती है ।)

रावण—(मधु-पात्र एक ओर रखकर) सीता, शायद यह मेरी धृष्टता है, पर एक बात मेरे मनमे खटक रही है,—यही कि मै शिव भक्त हूँ और यह शिव-धनुष है। उसके चढानेकी बात सोचकर मेरा मन बहुत ही व्याकुल हो जाता है।

(सीता सिर हिलाती है।)

रावण—स्वयवरमे भाग लेने जितने राजा-महाराजा आये है, प्राय सभीको मैं जानता हूँ। उन सबोंमे दो ही यह सामर्थ्य रखते है,—एक अयोध्याके राजकुमार राम और दूसरा मै। पर उनमे ओर मुझमे एक अन्तर है। उनको यह दुविधा नहीं है कि यह शिव-धनुष है, पर, मेरा मन आगा-पाछा कर रहा है कि मनोरथकी सिद्धिके लिए गुरुका धनुष कैसे उठाऊँ? यह विचार कभी कभी भयकर हो उठता है। सीता, कितना भी समाधान करता हूँ, पर,—सोचा नहीं था, कि यावज्जीवन जिसके लिए छटपटाता रहा, तड़पा किया,—उसीकी प्राप्तिके समय यह विषम समस्या—। —आर भी एक सन्देह मेरे मनको व्याकुल कर रहा है। मै रामचन्द्रकी तरह एकपत्नी व्रत लेने अथवा अपना प्रताप दिखाने नही आया हूँ। जिस इच्छाके पाछे मै जीवन भर दौड़ता रहा, उसीकी प्राप्तिके समय यह विषम परिस्थिति आ खड़ी हुई। मेरा यह गर्व रहा है कि मेरे लिए असाध्य कुछ भी नही है। यदि यह गुरुका धनुष न होता तो मेरे लिए यह कोई बात न थी। किन्तु, यह गुरुतर अपराध भी तुम्हारे लिए करनेको तैयार हुआ हूँ। अभी मेरे अन्तरमे जैसी हलचल मची हुई है वैसी कभी मैंने जीवनमे अनुभव नहीं की। (रुक जाता है)——तुम सहृदय हो, सत्यको पहचान सकती हो,

इसलिए, साफ साफ कहता हूँ । गुरुपर भक्तिके कारण यदि शिव-धनुषको झुकानेमे हृदय कंपित हो जाय,—मै हार जाऊँ, तो कुछ आश्चर्य नहीं । उस समय राम ही विजयी होंगे । तुम,—तुम,—(गद्गद कंठसे) तुम रामकी पत्नी हो जाओगी । लेकिन, राम पति नहीं होंगे । रामका जीवनोद्देश्य आदर्श शासक,—आदर्श राजा, बनना है, आदर्श पति बनना नहीं। उनका आदर्श उनको या तुमको सुखी न बना सकेगा । समस्त जीवन तुम्हारे पैरोपर निछावर कर आदर और प्रेम करनेवाले प्रियतमकी जरूरत यदि तुम कभी महसूस करो तो मेरी खोज करना, यह रावण तुम्हे सदा लभ्य ही होगा । याद रक्खो, उन्मत्त होकर नहीं कह रहा हूँ, सीता—

सीता—(बहुत देरतक रुककर) मेरी बुद्धि या इच्छाका यहाँ कोई महत्त्व नहीं है। रावण, मैंने अपना सर्वस्व पिताकी इच्छा तथा विधिके हाथोमे रख दिया है।—कल सबकी समस्याओका समाधान———

रावण—यावज्जीवन शिवकी तपस्या की है, आज उस सबका फल 'तुम्हे' चाह रहा हूँ। देखूँ, गुरु कल परीक्षा लेते है या—

दासी—राजकुमारी, महाराज—

रावण—कल स्वयवरमे—

सीता—स्वागत ।

रावण—कृतज्ञ हूँ—सीता, बिदा ।

सीता—अच्छा ।

(रावण सीताकी आँखोंकी ओर देखता हुआ,—दृष्टि न फिरा सकनेके कारण रुककर, फिर अपनेको सँभालकर, चला जाता है ।)

[पर्दा रुक रुक कर गिरता है ।]

द्वितीय दृश्य

[सायकाल । जनकपुरके राज महलका अन्तभाग । उद्यानकी आर द्वारवाला कक्ष । हसकी आकृतिवाली धूपदानामे सुगन्धित द्रय जल रह हैं । उनका धुआँ हवाके कारण ऐठकर तन्वगीक अगसे भी सुदर वक्रता और सुकुमारता लिये हुए ऊपरकी आर उठ रहा है । मद मद मारुत धीरे धीरे सुगधि ला रहा है । सीताके अद्ध निमीलित नत्रोका दृष्टि उद्यानकी लता राशिको पार करती हुई विविध स्वप्नोका जाल बुनती हुइ क्षितिजपर पड रही है । दासा धीरे धीरे प्रवश कर अचलके फूलोका शय्यापर बिछाती है ।]

दासी—राजकुमारी, अयोयाके राजकुमार रामचद्रने सचित करनेको कहा हे ।

सीता—लिवा लाओ । (ठाकसे बेठता हे)

[रामका प्रवश । बीस वर्षका वय मालूम पडता है । अन्त समाक्षावाले नत्र हैं । सीता उठकर स्वागत करती है ।]

राम—मने नहा समझा था कि मिथिला अयोयामे भी सुदर है ।

सीता—लेकिन, लाग कहते है कि अयोया जेसे बड़ बड़े भवन और वहाँ जैसी विचित्रताये यहाँ नही है ।

राम—इस उद्यानके सदृश एक भी उद्यान मेरे राज्यमे नहा हं ।

सीता—ये दोनो पेड़ पिताजीने काश्मीरसे मॅगाये थे ।

राम—बहुत हा सुदर हे ।

सीता—चेहरेसे कुछ थकावट झलक रही है । सुना है कि मार्गमे, तथा विश्वामित्र मुनिके आश्रममे, कुछ श्रम उठाना पड़ा है ।

राम—नही नही, सो बात नही हे । नदी, वन, पर्वत आदिका सोदर्य देखनेकी इच्छासे ही गुरुवरके साथ मै पैदल आया ।

सीता—पैदल ही !

राम—अच्छा, मै अपने हृदयकी एक दो बातें कहने आया था—

सीता—हाँ, हाँ, अवश्य कहिए।

राम—मै अपने जीवनको एक आदर्शका साधन बनाना चाहता हूँ और आदर्श प्रधान जीवन कटकमय होता है। प्रजाके प्रति पिताके समान अनुराग और वात्सल्य रखना, उसके वास्ते चाहे जितने सकट आवे सहना, उसके सुखके लिए अपने सुखोको न्योछावर करना, आदर्शमय जीवन बिताना तथा 'जनवाक्य प्रमाणम्' को ही लक्ष्य बनाना,—सक्षेपमें यही मेरे जीवनके उद्देश्य हैं।

सीता—यदि प्रजाका कोई अनुचित इच्छा हो?

राम—प्रजा उतनी दुष्ट और मूर्ख नहीं होती, यह मेरा विश्वास ह। वैसी चाहना उनकी होगी ही नहीं।

सीता—हॉ, अधिकाश प्रजा सरल और अबोध ही होती है। पर, उनमे क्या कुछ दुष्ट प्रकृतिके नही होते?—वे दुष्ट ही कभी कभी उन सरल-चित्त लोगोको अपनी ओर कर लेते है।

राम—हॉ, यह सभव है, सभव ही नहीं, सत्य भी है। वैसे मौकेपर मै सत्यासत्यका निर्णय समयके हाथो छोड़कर प्रजाके इच्छानुसार ही करूँगा। समय हा सत्यको प्रकट करेगा,—धर्मको विजयी बनावेगा। तात्कालिक कष्ट मै सहन करूँगा।

सीता—पर, वैसे जन-मतका मूलोच्छेद कर शासन क्यों न किया जाय?—मै सिर्फ आशय जाननेके लिए ही पूछ रही हूँ।

राम—यह पूछना ठीक भी है। क्यों कि, मुझे पूरा पूरा समझकर, मेरे आदर्शोको स्वीकृत कर, यदि आज्ञा न दोगी तो मुझे कलके स्वयवरसे कोई सम्बन्ध न रहेगा। सीता, मेरी पत्नी सब विषयमे मेरी

सहचारिणी बनेगी। वह सामान्य लोगोंकी पत्नियोंकी तरह न होगी। यह मै जानता हूँ कि मेरा सोचा हुआ मार्ग मेरे जीवनको कष्टोमें डालेगा। कभी कभी ऐसी ऐसी बाधाये भी उपस्थित होगीं कि मैं अपना निश्चित-मार्ग छोड़नेपर तैयार हो जाऊँगा,—यह सब मैं समझता हूँ। मेरी सहधर्मिणी होनेवालीको कितनी वेदना होगी,—यह भी विचारता हूँ।—पर, स्त्री हृदयको मै थोड़ा थोड़ा पहिचानता हूँ।—आपदाओंको सहनेकी महत्तर शक्ति है उसमे। इस 'स्त्री' नामक अद्भुत् सृष्टिमें दूसरोंका दु ख देखकर अपने दु खसे भी अधिक दु खी होनेका एक महत् गुण है।

सीता—(गौरव-पूर्ण नेत्रोसे देखती हुई) ये वाक्य मुझे लज्जित कर रहे है।

राम—स्वाभाविक विनम्रताके कारण।—तुम जनककी एक-मात्र लाड़िली पुत्री हो, वे तुम्हे आखोकी पुतलीकी तरह पाल रहे हैं।

सीता—अरे, मै व्यर्थ बीचमे बाधक बनी। मेरी बाते छोड़िए।—उन आदर्शोंके बारेमे पूरा पूरा सुननेकी उत्सुकता मैं नही रोक सकती।

राम—जब तक पूरा समझमें न आ जाय, तब तक तो तर्क करना ही चाहिए।

सीता—अवश्य। मुझे भी पूर्णतया जाननेकी इच्छा है।

राम—प्रजा-पालन करनेवाले राजाको जीवन-पर्यंत कैसे रहना चाहिए, यह आदर्श मुझे अपने जीवनमे चरिताथ करना है। इसलिए, मेरा हाथ पकड़नेवाली भी उसीके अनुरूप तेजस्वी और दृढ़ हो, यह जरूरी है। मेरा निश्चित विचार है कि आवश्यकता

पड़नेपर अपने आदर्शोंके लिए,—प्रजाके लिए, अपने सारे-सुखोका उत्सर्ग ही नही बल्कि राज्य भी (सिर झुकाकर), कलत्रतकका परित्याग भी,—चाहे वह कितना ही दुस्सह हो—(सीताकी ऑखोको देखते हुए)—इसलिए, खूब सोचकर, मुझे और मेरे आदर्शोंको पूरा पूरा समझकर,—मेरे द्वारा जीवनमें कैसे कैसे कष्ट आ सकते है उन्हे विचारकर, कल स्वयवरके पूर्व मुझे खबर भेजना। उस वचनके बिना मैं स्वयवरमे पैर नहीं रख सकता।

(दोनों कुछ देरतक नि शब्द बैठे रहते हैं।)

सीता—(महीन आवाजमें) रामचद्र, स्वयवरकी घोषणाके पूर्व ही पिताने मुझसे कहा था कि शिव-धनुषको कोई साधारण मनुष्य नही चढ़ा सकता, इसलिए कोई महापुरुष हा तुम्हे मिलेगा।—मुझे पिताके ऊपर प्रेम और आदर ही नहीं, बल्कि उनके सत्सकल्पमें और उनकी पवित्रतामे अखड विश्वास भी हे। इसलिए, सब कुछ मैंने पितापर और उस विधिपर हा छोड़ दिया है। कष्टोसे मै नहीं डरती। सहनशीलतामें मेरी माँके बाद ही कोई होगा। उनकी पुत्री कहाने लायक मेरी परीक्षा हो तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगी। आपके ये आदर्श बहुत उच्च है। डराना तो दूर रहा, ये मुझे उलटे आकर्षित ही कर रहे है।—रही कलकी बात, सो मैने अपना भविष्य धनुषमें बॉधकर विधि और पिताके हाथो सौप दिया है। अब मेरी अपनी इच्छा नहीं है। रावणके प्रश्नका भी मैंने यही जवाब दिया था।

राम—हॉ, मै भी रावणसे मिला था। कहता था कि प्रणय-स्वरूपिणी देवीके वास्ते ससार-भर घूमा और अतमें तुममें उस स्वरूपका

दर्शन किया । इसीलिए, शिव-धनुष भी उठानेको तैयार हुआ है । पूरा प्रेमी जान है । जीवन किस तरह प्रेमसे, सुखसे, बिताया जाय, इसके सिवा वह कुछ सोचता ही नही ।

सीता—हा, सब साफ साफ कह गया है ।

राम—लेकिन, सीता, मेरे विचार उससे बिलकुल भिन्न है ।

सीता—हॉ ।

राम—तो कल स्वयवरमे—

सीता—पधारे । मैंने सब समझ लिया है । वे सब आदर्श मुझे स्वीकार है ।

राम—कृतज्ञ हूँ । इसस अधिक क्या चाहिए । कष्टके लिए क्षमा—

सीता—नहा, इसमे कष्टकी कौन-सा बात ह !

राम—अच्छा, तो बिदा लेता हूँ ।

(दासीका प्रवेश)

दासी—राजकुमारी, माता——

सीता—(उठकर) अच्छा, बिदा ।

राम—बिदा । (प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

[पचवटा । गादावराका किनारा । लताच्छादित तमाल वृक्षोंके नीचे स्वच्छ, सुदर पणशाला । कुटीरक चारों तरफ मन्दार, बेला, चमेली, रजनीगन्धा, आदि पुष्पोके पोध झूम झूमकर सुगंध फैला रहे हैं ।

एक मृगछौना वृक्षपर बैठे कौएको देखकर छलाँगें भर रहा है । हरसिंगारकी छायामे सापानाकार बनी हुइ शिलापर साता राम बैठे हैं । सीता विचारमग्न है । रामका आँखे चारो आर घूम रही हैं । सीताके कधेपर हाथ रखकर राम उसे अपने पास खींचते हैं । सीता दाघ नि श्वास छोड़ती है ।]

राम—(दु खसे) सीता, यह राम तुमको कितना कष्ट दे रहा है !

सीता—(शान्ततासे) यह मत कहो । बगलमें रामके रहते सीताको कष्ट !—ऐसा कभा मत सोचना ।

राम—नहीं, साता, तुम सुकुमार हो—

सीता—(बीचहीमे) क्या तुम सुकुमार नहीं हो ? फिर क्या म हा ऐसी हूँ जो कष्टोको सहन न कर सकूँ ?

राम—फिर भी बाल्य कालसे ही तीर चलाना, घोड़ेकी सवारी करना, मल्ल युद्ध आदि सीखनेसे मेरा शरीर कष्टोका अभ्यासी हो गया है । पर तुम—

सीता—क्यो ? मै क्या तीर चलाना, घोड़ेपर चढ़ना नहीं जानती ? मने भी ये परिश्रम साध्य विद्याये सीखी है । तुम जितने सुकुमार हो, मे भी उतनी ही सुकुमार हूँ । तुम्हारे कष्ट असह्य ह । तुम्हें राज्य, प्रजा, माता आदिकी अनेक चिन्ताये हैं, पर मुझे केवल एक ‘ राम ’ की चिन्ता है और मेरा राम मेरे पास ही है,—मुझे कष्ट क्या ?

राम—(प्रेमसे साताका आलिंगन कर) सीता, तुम धैर्यमे, साहसमे, बलमें और सहन शक्तिमें कम हो, यह मेरा मन्तव्य नहीं। लेकिन, अन्त पुरमे दुःखकी छायासे भी अपरिचित रहनेवाली तुमको वन वन फिरानेका कारण मै ही हूँ न? यही—

सीता—सहचारिणी बनकर तुम्हारे साथ न जानेसे प्रजा निन्दा करेगी,—यह डर (रामकी आँखे छलछला आती हैं) मुझे यहाँतक नहीं लाया है। गुलामका तरह तुम्हारा आज्ञासे भी नहीं आई हूँ। वरन् बिना राम साता नहीं। इसलिए, इस अरण्यमे भी आनन्द ही है। राम मेरे साथ रहेंगे,—मुझे और कुछ नहीं चाहिए, यही सोचकर मै आई।

राम—सीता, धन्य हूँ म। उस दिन वन आनेके समय मेरे कारण तुम्हे कष्ट न पहुँचे, इसीलिए अवधि भर मिथिलामे रहनेकी सलाह मैंने दी थी। परन्तु, उसी समय हृदयने प्रश्न किया—राम, तुम सीताके बिना जीवन धारण कर सकोगे?

[सीता रामका अलिंगन कर एक क्षण तक अपना सिर उनक कधपर रखती है,—फिर उसास लकर—]

सीता—प्रियतम, मुझे कुछ न चाहिए। भवन, राज्य, प्रजा, सेवक,—कुछ नहीं। इसी पणशालामें इसी तरह जीवन बीत जाय, यही आकाक्षा है। हिरनोके ये झुड, गोदावरीका यह कलकल, ये पुष्प, ये लतायें, ये तमालके सुन्दर वृक्ष और,—और मेरे यह राम, —बस, मेरे लिए यही बस है।

राम—सीता, तुम्हारा प्रेम मेरे जीवनके बाँधको पारकर बह रहा है। तुम्हारे बिना जीना दुर्भर मालूम पड़ता है।—लेकिन, सीता,

मुझे इन सुखोंसे तृप्ति नही। मुझे माल्म पड़ता है जैसे इससे भी अधिक,—इससे भी आगे, मेरे लिए कुछ है। बराबर सुखमे डूबते-उतराते हुए, निर्बाध आनन्दके साथ अटूट सगीतकी भाँति, अमृत रसके अवारित प्रवाहकी नाई, जीवन बितानेके लिए रावण ही विशेष उपयुक्त है। [सीता रामको मर्मभेदी दृष्टिसे देखती है।] परन्तु, सीता, मै नही चाहता कि हम साधारण पति-पत्नीकी तरह सासारिक सुखोम लिप्त होकर जीवन गवॉ दे। मेरी इच्छा होती है कि युग-युगा तर तक ससारको प्रकाश मार्ग दिखाते हुए आकाशके गभार नीला तरालम तेजोराशि विकीर्ण करनेवाल उज्ज्वल नक्षत्रकी तरह तुम्हे इस विश्वके क्षितिजपर स्थापित करूँ और स्वय भा तुम्हारे पास खड़ा होऊँ। पर कभी कभी तुम्हारे पवित्र-प्रेमकी अमृत-वाहिनीमे बहते हुए जब तुम्हारा प्रेम-सौदर्य बिजलीकी तरह ऑखोको चौंधिया देता है तब सोचता हूँ,—जीवनको सफल बनानेके लिए इस अद्भुत स्वर्गीय प्रेमकी प्राप्ति ही काफी है। मुझे सीताके सिवा और कुछ न चाहिए। सीता, इच्छा होती है, तुम्हारी सुन्दर छायामे अपनेको पूर्ण रूपसे मिलाकर, आत्म-विस्मृत होकर, प्रेमोन्मत्त बन जाऊँ और इन अनावश्यक चिन्ताओको छोड़ दूँ। परन्तु, उसी क्षण एक अदृश्य तर्जनी मुझे मार्ग दिखाती हुई मानो सकेत करती है,—'राम, यह देवी सीता हृदयको साहस देनेवाली है, एक प्रकाश-पुज है, पुरुषार्थ साधनेके लिए विश्वके कल्याणार्थ अवतरित देवता है। सावधान! तुम्हारा आनन्द तुम्हारी ऑखे बन्द कर रहा है। खयाल रखना, अपने उद्देश्योंको भूल रहे हो'—सीता, तुम मेरी दृष्टिमें महादेवी ही प्रतीत होती हो। यदि तुम केवल अपना सुख ही चाहो

तो उसके लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर, भौतिक आनन्दोमें डुबानेकी सामर्थ्य रखनेवाला वह रावण ही तुम्हें—

(सीता रामका मुँह बद करती है। दोनो आलिंगन पाशमे बद्ध हो जाते हैं। इसी समय बाहरसे ' सीता राम 'की ध्वनि आती है। दानो चौक उठते हैं।)

राम—यह गभीर स्वर किसका है ?

साता—यह तो रावणके कण्ठ स्वर जेसा है !

राम—हॉ है तो !—तुम्हे कितना याद है ! !

[रावणका प्रवेश। साथमे धनुष बाण लिए लक्ष्मण हैं। वे एक पग आगे रखकर रुक जात हैं। रावणको पहले सीता दखती है। रावणके हाथ उठाते ही सीता और राम अभिवादन करते हैं।]

सीता-राम—रावण, स्वागत ! स्वागत !

रावण—धन्योऽस्मि। राम, लक्ष्मण कितना गरम हो रहा है, देखो तो !

राम—क्यो ?

रावण—पहले तो इसने मुझे इधर आनेसे रोका और फिर झट खाच लिया तरकससे तीर ! देवी सीताके ऊपर उसका भक्ति देखकर मै शात रह गया।

(लक्ष्मण तीव्रत्तर दृष्टिसे रावणका दखते हैं—)

राम—(मुस्कुराते हुए) भाई, रावण अतिथि है, इसलिए गौरवास्पद है।—(रावणसे) तुम्हारा आना, हमे आश्चर्यमे डाल रहा है। अभी प्रसगवश तुम्हारा ही बात हो रही थी।

(लक्ष्मण कुटीरके पीछ घने निकुजमे चले जाते हैं।)

रावण—(प्रसन्नतासे) भला, क्या आपको मै जानता नहीं हूँ ?

सीता—(मुस्कराकर) रावण, यहाँ यह शिला ही आसन,

गोदावरीका शीतल समीर और वन्यलताओंका सौरभ ही आतिथ्य है। इससे अधिककी इच्छा भी न करना। उस शिलासनपर बैठो।

रावण—(प्रसन्नतासे) जहाँ तुम लोग रहते हो, आनन्द वहीं रहता है। तुम्हारे हृदय जो अपूर्व आतिथ्य देते हैं, उससे शीतल दूसरा आतिथ्य क्या होगा?

सीता—नहीं, नहीं। शबरीके आतिथ्यको देखते तो तुम ऐसा न कहते।

रावण—हाँ, मैंने सुना है उस महाभक्ताके बारेमे। त्रिलोकमे ऐसा कौन होगा जो सीता-रामका आवाहन कर उन्हे अपना सर्वस्व अर्पित न करे?

राम—रावण, शबरीकी कहानी आ-चन्द्रतारार्क रहेगी। ओह, क्या मुग्ध भक्ति थी! मै तो अपनेको देखकर ही लज्जित हो गया। इतना—

रावण—और मै अब लजा रहा हूँ कि मै ही वह शबरी क्यो न हुआ?

सीता—क्या दिल्लगी है!

रावण—यह परिहास नहीं। अन्तरतमसे निकली वाणी है।

राम—लंकेश्वरकी ऐसी हालत क्यों?

रावण—मै एक कार्यसे आया था, उसमे—

सीता—क्या है वह कार्य? हम अपनी शक्ति-भर सहायता करेंगे, कहो।

राम—हाँ, हम सावधान हैं। कहो, क्या है वह कार्य? हमसे होनेवाला हो तो——

रावण—हाँ, तुमसे ही होगा।

सीता—तो फिर सोच विचार क्या ? देर क्यों ?

रावण—सकोच हो रहा है,—शायद स्वीकृत न हो।

सीता—असल बात क्यों नहीं कहते ? यह भूमिका क्यो ?

रावण—जबसे तुम लोगोने अयोध्या छोड़ी, तभीसे मेरा मन आदोलित हो रहा है। सुना कि कैकेयीके वशीभूत महाराज दशरथकी आज्ञासे तुम लोग चौदह वर्षके लिए वनवासी हुए हो। तुम लोग जब चित्रकूटमे ठहरे थे, तभी मिलनेकी इच्छा हुई, पर पुन सदेह हुआ,—कही मेरी प्रार्थना अस्वीकृत हुई तो ? फिर सोचा, प्रयत्न करके तो मुझे देखना चाहिए। इसी सोच-विचारमे अब तक बैठा रहा। कल शबरीकी कहानी सुनकर बड़ी लज्जा हुई कि मै ही वह पहला व्यक्ति क्यो न हुआ ?

सीता—अरे भई, असल बात तो कहते ही नही !

रावण—इस घोर अरण्यमें मै आप लोगोकी तकलीफ नही देख सकता। मुझे कष्ट हो रहा है।

सीता—तुम नही जानते, तुम इसे कष्ट समझ रहे हो। हमारे साथ कुछ दिन रहो तो यहाँका सुख मालूम पड़े।

रावण—धन्य हुआ मै।

राम—रावण, तुम्हारे भाव स्पष्ट नही हुए।

रावण—मेरी एक छोटी सी अभिलाषा है।

सीता—ओह ! तो कहते क्यो नही ?

रावण—लेकिन तुम लोग कहीं अन्यथा न समझ लो। मुझे सीतापर तथा तुमपर जो प्रेम और आदरका भाव है, वह तुम लोगोंसे

छिपा नहीं है। तुम लकापुरीमे रहकर बाकी अवधि पूरी करो। इस पचवटीसे अयोध्याकी अपेक्षा लका समीप है।

राम—रावण, तुम्हारे प्रेम और आदरके लिए हम बराबर कृतज्ञ हैं और रहेंगे। परन्तु, यह नहीं हो सकता।

रावण—सुनो राम, मै लकाका राज्य,—अपना सर्वस्व, तुम्हारे अधीन कर दूँगा। मै यहाँ न रहूँगा। क्योंकि, इससे तुम लोगोंकी कुछ बदनामी होगी। मैं आग्नेय दिशाकी ओर जाकर नूतन राज्यकी स्थापना करूँगा।—सीता इस अरण्यमें!!—राम, मुझे बड़ी वेदना हो रही है!

सीता—तुम्हारा मन उस पवित्र सुख और अनिर्वचनीय आनन्दानुभवको ग्रहण नहीं कर रहा है, जो हमें यहाँ प्राप्त है।

राम—सीताने ठीक ही कहा। तुम्हारे इस प्रेम-पूर्ण निमत्रणको हम स्वीकार नहीं कर सकते, क्षमा करो। पिताकी आज्ञा-पालनके लिए जिस दिन मै अकेला ही बन आनेको तैयार हुआ और सीताको मिथिला भेज देना चाहा,—और सीताको वह मजूर न हुआ, उसी समय मैने समझा था कि इसमें कुछ विधिका भी हाथ है।

रावण—राम, तुम्हारी अथाह गहराई न मालूम क्यों मुझे आकर्षित कर रही है।

सीता—अब तुम रामको समझ रहे हो।

रावण—लकामे सब सुख-सामग्रियोंके रहते हुए भी तुम लोगोंका ध्यान बराबर रहनेके कारण मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।

सीता—(दुःखके साथ) हम विवश हैं।

राम—रावण, सीताकी सहन-शक्ति तुम नहीं जानते। मुझे ही

यह धीरज दिया करती है। हमारे बारेमे उतना सोच-विचार करनेकी जरूरत नहीं।

रावण—हाँ, यह सब मैंने पहल ही सोच लिया था। फिर भी, तुम चाहो तो लका तुम्हारे अधीन है। मै तुम्हारा इच्छानुवर्ती हूँ। सीताके लिए सब-कुछ करनेको तैयार हूँ।

सीता—रावण, तुम और रामचन्द्र केवल मेरा गुण गान करते हो, पर तुम्हारी महती शक्ति देखकर मै भी अपनेको पिछड़ी हुई समझती हूँ।

राम—हाँ, इसमे बड़ी उदारता है। कल तुम्हारी छोटी बहिन आई थी और हमारे सुख-दु खमे हाथ बँटानेका बहुत आग्रह करती थी। उसको रोकना बहुत कठिन हो गया। सीताके बहुत विनती करनेपर ही हटी।

रावण—अच्छा, हम सदा ही तुम्हारे अधीन है,—यही काफी है।

राम-सीता—वाह ! वाह ! कैसी बात कहते हो !

राम—लक्ष्मण, रावणके हाथ पैर धुलवानेका आयोजन करो।

साता—लक्ष्मण क्यो, मै किये देती हूँ।

चतुर्थ दृश्य

[पचवटीके पास गोदावरीके उसपारका जगल । रावण बहिनसे मिलता है। उसका रूप देखनेवालोंको एकाएक आकर्षित कर देनेवाला है ।]

रावण--सूना, इधर क्यो आई ?

शूर्पनखा—(हँसती हुई) तुम क्यों आये ?

रावण—बिलकुल अनजान-सी पूछती हो ?—सीताको देखने।

शू०—और मै, तुम्हारी सहायताके लिए आई हूँ। क्या समाचार है ?

रावण—भला, क्या सहायता करोगी ?

शू०—सीता-प्राप्तिके उपाय करूँगी । सुनो, हँसी नहीं—

रावण—यह तो हास्यास्पद बात है । सीताका हृदय मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ । वह रामको अपने शरीरके अणु-अणुसे प्यार करती है । उनका अद्भुत जीवन देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ।

शू०—समरांगणमे तुम जितने शूर हो स्त्री हृदयके समक्ष उतने ही कातर । इसीलिए, आजतक तुम इच्छानुकूल प्रेम न प्राप्त कर सके।

रावण—सूना, आज तुम अजीब ढगसे बाते कर रही हो ।

शू०—यह सब नहा । मैं जो कहती हूँ, करो ।

रावण—अब कोई फायदा नहीं । इतना ही नही, और एक बात है । मै इसे पाप भी समझता हूँ । अब सीताके लिए एकान्तमें चिता-काष्ठकी तरह राख हो जाना ही उत्तम है ।

शू०—छि , पागलोकी तरह बाते मत करो ।

रावण—सूना, तुम नहीं जानती हो । सीताके प्रथम दर्शनसे ही यह तुम्हारा भाई बिलकुल बदल गया है । मेरा सारा जीवन, मेरा

सारा जगत्—सीता, सीता, सीता——(आकाशकी ओर देखता और निःश्वास छोड़ता है ।) सीता, सीता, सीता !

शू०—(सिर हिलाते हुए) भैया, इतना निराश होनेकी जरूरत नही है । मैने भी रामसे प्रेम किया है । अपने जीवनमें वैसे सुन्दर पुरुषको मैने नही देखा । मैं उसके लिए सब कुछ करनेको तैयार हूँ । उसके बिना बड़ी यत्रणा सह रही हूँ। लेकिन, तुम्हारी बाते विचित्र-सी मालूम पड़ती है। तुम तो सीतासे भी बढ़ी-चढ़ी सुदरियोको जानते हो ।

रावण—ऐसा न कहना । मेरे अतरक परिवर्तनको तुम नही जान सकतीं ।

शू०—(हॅसती हुई) वाह, कितने बदल गये हो भैया, तुम ! फिर भी सुनो । कल बहुत देर तक मै उन लोगोके पास था । लक्ष्मण तो एकदम बेवकूफ-सा मालूम पड़ता है । मुझे अदर जाने ही न देता था । इतनेमे रामने देखा और बुलाया । आह, राम कितना नम्र है ! बहुत देर तक वहाँ रही । लक्ष्मण तो एकदम पत्थर—

रावण—उसको भाई भौजाईकी सेवा करनेके सिवा और कोई चिन्ता ही नहीं । उन लोगोंके कॉटा भी चुभे, यह वह नहीं सह सकता । हम दाक्षिणात्योंसे न मालूम क्या हानि हो, इसलिए वह सदा सावधान रहता है । वह भी बड़ा अच्छा आदमी है । मिथिलामें मैने जब अपने प्रेमका वर्णन रामसे किया था, तब उसने भी सुना था । उस दिनसे मुझपर और मेरे आदमियोंपर बराबर उसको सन्देह रहता है । विवाह बन्धनका प्रेमसे कोई सम्बन्ध नहीं । वह बेचारा नहीं जानता कि प्रेम उस बन्धनको आसानीसे तोड़ सकता है । वह आर्य-धर्मके सिवा हम लोगोंके धार्मिक आचारको कभी स्वीकार

नहीं कर सकता। हमारे धार्मिक और सामाजिक विधानोंको निष्पक्ष दृष्टिसे वह देख ही नहीं सकता।

शू०—और राम ?

रावण—उनकी विशाल दृष्टि है। उनकी बात ही दूसरी है।

शू०—है न ? कैसा आदमी है!

रावण—अच्छा, तुम अपनी हालत तो कहो।

शू०—मै जब तक वहाँ रही, देखा, राम मुझपर प्रसन्न ही है।

रावण—मुझे विश्वास नहीं होता।

शू०—लेकिन तुम वहॉ होते तो अवश्य विश्वास होता।

रावण—अच्छा, तो चलो, चलें।

शू०—मै अभी नहीं आ सकती। अपना व्रत-फल पानेका मार्ग ढूँढूँगी। रामको अब एकान्तमें हा देखूँगी। पर, तुमको देखकर एक विचार सूझा है।

रावण—वह क्या ?

शू०—तुम एक तरहसे पागल हो रहे हो। आज तक तुम ससारमें निर्बाध विचरण करते रहे। लेकिन, अब तुममे विचित्र कायरता समा रही है।

रावण—मैं बदला हूँ, यह तो ठीक है। पर, तुमने क्या विचारा है सो तो कहो।

शू०—कुछ नहीं। स्त्री और पुरुषके,—उसमें भी खास कर स्त्रीके प्रेम जीवनमें ईर्ष्याका स्थान अधिक रहता है। तनिक वियोग भी न सहन कर सकनेवाले प्रेमियोंके मध्यमे ईर्ष्या खटाईका काम करती है।

रावण—हाँ।

शू०—अच्छा, तुम सीतासे प्रेम करते हो न ? और मुझे रामपर—

रावण—तो ?

शू०—इसलिए हम दोनोके फायदेका एक अनुकूल मार्ग है। तुम बहुत प्रयत्न करके भी सीताको अपने प्रति उन्मुख न कर सके। लेकिन राम मेरे ऊपर प्रसन्न ही है।

रावण—अविश्वसनीय बात है ! आश्चर्य—

शू०—प्रेम विचार और तर्कसे समझमे आनेवाली चीज नहीं है। इन बातोको ग्रहण करनेवाला हृदय है। रामको तुम नहीं जानते। मै जो कहती हूँ, सुनो।

रावण—(विचारपूर्वक) अच्छा, कहो।

शू०—मै रामको अलग ले जाकर सीताके हृदयमे ईर्ष्या उत्पन्न करूँगी और उसी समय तुमको खबर करूँगा। बस, तुम बिना विचारे आकर सीताको लका ले जाना।

रावण—कोई फायदा न होगा। तुम भूल कर रही हो।

शू०—बस, यही एक मार्ग है, दूसरा नही। तुम स्त्री स्वभावको नहीं जानते हो। मेरे कहे मुताबिक करो। सीता रामके साथ बहुत कष्ट पा रही है। ये नदी, बन, पवत चाहे कितने हो रमणीय हों, मनोमोहक हो, पर कभी कभी रामकी विचित्रताये सीताको उबा देती है। उस दिन सीता कह रही थी—'प्रिय, हम लोग इसी तरह सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत कर दे, फिर प्रजा और राज्य वगैरहकी झझट क्यो ?'—इसपर रामने एक व्याख्यान झाड़ डाला।—'सीता, मै जब तुम्हारे प्रेमामृत-प्रवाहमे बहता रहता हूँ, उसी समय एक अदृश्य उँगली उठकर कहती है—राम, सावधान। तुम अपने उद्देश्योसे दूर हुए जा रहे हो, तुम्हारे लक्ष्यकी पूर्तिके

वास्ते ही सृष्टिने एक शक्तिको सीता-रूपमे निर्माण किया है,—सावधान ! '

रावण—(आतुरतासे) अच्छा, तो सीताने क्या कहा ?

शू०—सीताने कुछ न कहा । अभी रामका व्याख्यान थोड़े ही समाप्त हुआ ! उन्होंने अन्तमें कहा,—' सीता, यदि तुम प्रेम-प्रधान जीवन ही व्यतीत करना चाहो, तो, भौतिक सुखोंका अद्वितीय उपभोगी,—अपना सर्वस्व निछावर कर तुम्हे ही सब-कुछ समझनेवाला रावण ही तुम्हारे योग्य है । '

रावण—सच, सूना ?

शू०—इसमे एक भी बात मेरी अपनी नही है । इसीलिए तो, इतने धीरजसे कह रही हूँ ।

रावण—अच्छा, तो सीताने क्या कहा ?

शू०—कुछ कहना ही चाहती थी कि तुमने ' सीता–राम ' कहकर पुकारा ।

राव०—तो यह सब मेरे आनेके पहले ही हो रहा था ? ओह, मै कैसा अभागा हूँ ! सीताके जवाबमे ही मै विघ्न स्वरूप आया । उसी जवाबमें मेरा भविष्य निहित था । हाय ! (उसास लेता है)

शू०—लेकिन वह जवाब ही समझो ।

रावण—क्या ? क्या ?

शू०—रामने पूछा—'यह गभीर स्वर किसका है ?' सीताने तुरत जवाब दिया,—' रावणका । '

रावण—(प्रसन्नतासे) सूना,—सचमुच ? सच कहती हो ? ओह ! मेरा शरीर काँप रहा है । सच कहती हो सूना ? (पार्श्वके वृक्षपर शरीर टेक देता है ।)

शू०—सुनो, अभी ढील पड़नेसे काम न चलेगा। (रावणके कंधेपर हाथ रखकर) मुझे तभी पूरी उम्मीद हो गई। सीताका हृदय बड़ा गभीर है। उस गभीरताके सबसे निचले स्तरमें तुम हो। पुरुषोंमें ही विवाहको पवित्र बधन माननेका वहम है। स्त्रियाँ तो जिधर उमड़ता हुआ प्रेम दिखाई पड़ता है, उधर ही झुकती है। राम अगर पास न हों तो सीता प्रजाका और विवाह-बधनका ख्याल कर तुम्हारे निर्मल-प्रेमका कभी तिरस्कार नहीं कर सकती। अगर तुम उसे लका ले जाओ और वहाँ अपना प्रेम प्रदर्शित कर उससे पुरानी बाते भुलवा सको, तो वह निश्चय ही तुम्हें स्वीकार करेगी। इधर अकेलेमें मैं रामको वश कर लूँगी। इसके सिवा दूसरा रास्ता नहीं है।

रावण—(खूब सोचकर) मेरा मन व्याकुल हो रहा है। तुम्हारी बातें आकर्षित कर रही है। लेकिन, पुन सन्देह होता है कि क्या उन मेरुके समान अचल व्यक्तियोंमें परिवर्तन हो सकेगा ?

शू०—भाई, ये बातें सोचनेसे समझमें नहीं आ सकतीं। इस समस्याका समाधान बुद्धिसे या तर्कसे नहीं होगा। यह होगा हियावसे, जोशसे, हृदयावेगसे, साहससे। राज्य छोड़कर, सुख छोड़कर, हरदम 'सीता सीता' चिल्लाते हुए सूखकर काँटा होनेकी अपेक्षा एक बार उसको पानेके लिए प्रयत्न कर देखना क्या ठीक न होगा ? यह ढीलापन क्यों ? अब सोचना छोड़ो और हृदय जिधर बतावे उधर आँख मूँदकर कूद पड़ो। सीताको अपने वशमें करो। प्रेम-ज्वालासे जलनेवाले प्रेमके लिए सर्वस्व अर्पण करनेवाले हृदयको देखकर स्त्री बिना पिघले नहीं रह सकती। सीताका भी हृदय स्त्री-हृदय है, वह शून्य नहीं है।

रावण—(गम्भीरतासे) सूना, अब विचारना नहीं है। मैंने अब आँखें मूँद लीं। तुम्हारी प्रेरणा मुझे चुम्बककी तरह खींच रही है। अब जीवनको ही दाँवपर रख दूँगा। हार या जीत,—बस, यह निश्चय है।—हाँ, अब विचारना नहीं है! सोचनेका काम नहीं है! सीताका प्रेम या सर्वनाश! बस, दूसरा नहीं।———सब बदल रहा है,—मेरा जीवन, मेरा हृदय, मेरी दुनिया,—सब बदल रही है।——अब सोचना नहीं है।———या तो महाप्रणय ही होगा या महाप्रलय।———सूना, मेरे लिए दोनों समान ही है।———बस, यही निर्णय है। अब नहीं सोचूँगा। आँखें नहीं खोलूँगा। मेरे वास्ते सीता ही,—सदा सीता ही,—बस! उसीके लिए सब। सूना, निश्चय! निश्चय!!

शू०—भैया, कोई भय नहीं, सब शुभ ही होगा।

रावण—(आलिंगन कर) सूना, तुमसे उऋण नहीं हो सकता। मुझे तुमने रास्ता दिखाया है। बराबर तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा।

शू०—यह पागलपन क्यों? खबर देते ही आ जाना। मारीचको मेरी सहायताके वास्ते भेज दो तुरत। बस, अब सीता तुम्हारी है। देखना, भूल न—

रावण—सूना, निश्चय है। तुम्हारा समाचार सुननेके लिए मेरा सारा शरीर कान होकर रहेगा। समाचार आनेके दूसरे ही क्षण सीता लङ्कामें होगी।

शू०—बस बस। यह है मेरे भाईकी धीरता! मै जाती हूँ। पर्वतपर रामके एकान्त विहारका समय हुआ। अच्छा भाई, मैं अब—

रावण—सूना, सावधान! मैं भी जाता हूँ।

(प्रस्थान)

पञ्चम दृश्य

[लकामे अशाक वन । जहाँ तक दृष्टि जाती है अशोक ही अशोक नजर आते हैं। एकके पीछे एक वलयाकार बने हुए माग निकुंजोसे सज्जित हैं। हर एक मोडपर लता मण्डित मरकतका चबूतरा है। उद्यानके मध्यमें वृत्ताकार सफेद फूलोंकी पाँति। बीचमे अशोक वृक्ष। उसकी जड़में चारो आर मरकतकी वेदी। उसपर सीता बैठी है।]

रावण—(प्रवेश कर शीघ्रतासे) सीता!

(सीता सिर उठाकर देखती है।)

रावण—सीता!

सीता—आओ, इधर आकर बैठो।

(रावण बैठता है। उससे कुछ बोला नही जाता।)

सीता—इतना उद्वेग क्यो? तूफानकी तरह मुझे क्यो उड़ा लाये? इसका अन्त क्या होगा, सो भी सोचा है?

रावण—हाँ, सोच लिया है।—युद्ध,—रावणका सहार,—रामकी विजय।———जबसे तुम्हे देखा तभीसे परिताप पा रहा था। तभीसे तुमने मुझमे दुर्बलता उत्पन्न कर दी है। तभीसे मेरे जीवनका उत्साह, बल, सब कुछ गायब हो गया और जीवन ही तुम्हारी इच्छाके रूपमें बदल गया। तुम्हारी प्राप्तिके लिए मै भातर ही भीतर झुलस गया था।—तब, कल अपहरण करनेका साहस किया। राम यह नहीं समझ सकेंगे। समझे भी तो प्रजाके लिए,—तुम्हारे लिए, युद्ध करने आयेंगे। मैं अपने हृदय-दौर्बल्य और प्रेमके साथ मरूँगा। सीताके लिए रामके हाथसे मृत्यु,—बस मुझे यही चाहिए। अब भी मुझे समझ सको,—सीता, तुम्हारी दृष्टिसे दूर रहकर जीना कैसे?— सीता, तुम्हारी आँखोंके सामने, तुम्हारे लिए जलकर भस्म हो जाऊँगा,—बस।

सीता—भविष्यमे तुम्हारी कितनी बदनामी होगी, सो विचारा है ?

रावण—हाँ, सब सोच लिया है। मुझे मालूम है,—इतिहास-कार मुझे भयकर क्रूर राक्षसके रूपमें चित्रित करेगे। वे कहेंगे कि दुष्ट वृत्तिसे, नीच आकाक्षासे, उनकी दृष्टिम 'पवित्र विवाह-बन्धन'की अवहेलना कर मै तुम्हे उठा ले आया।—लेकिन, वे क्या जानेंगे कि तुम्हारे प्रथम दर्शनसे ही स्त्री-जातिने मेरी दृष्टिको कैसा विकसित कर दिया है।—वे अनन्त काल तक मुझे दूषणका पात्र बनाकर रखेंगे। मेरे विचारको नही समझेगे।—क्या हुआ इससे ? इस तरह भी मेरा नाम सीता-रामके साथ गूँथा जायगा। जाने दो,—दुष्ट कहलाकर भी तो तुम लोगोकी यशोवृद्धि करता हुआ तुम्हारी गाथामे स्थान पाऊँगा! तुम्हारे नामके साथ मेरा नाम भी तो अनन्तकाल तक लोग गाते रहेंगे! बस, मुझे उसीसे सन्तोष होगा। (दुःखसे) सीता, अब भी तुमने मेरा हृदय समझा ?

सीता—क्यो नहीं समझा ? आज ही क्यो, तुमको बराबर मैं ठीक ही समझती आ रही हूँ। परन्तु,—

रावण—सीता, प्रेम मुझे उन्मत्त बना रहा है।

सीता—लेकिन इतना साहस व्यर्थ——

रावण—सोचा, तुम्हारे बिना अब जी नहीं सकता। मृत्युने आकर्षित किया। इसीलिए ऑखे मूँदकर साहस करके कूद पड़ा।

सीता—क्यो ?

रावण—क्या करूँ सीता! मेरे अन्तरमे कैसी ज्वाला उठ रही है,—क्या उसका अनुमान नहीं कर सकती हो ?

(सीता सिर हिलाती है।)

रावण—सीता, मैं इस जीवनमें कितना जला हूँ, और इसकी शान्तिके वास्ते कितना व्याकुल हुआ हूँ! ओह! सीता, सारे विश्वका अन्वेषण किया।—परन्तु शीतलताका एक कण भी कहीं न मिला। असख्य सौन्दर्य-प्रतिमाओंको अपने अधीन किया। पर, वे सब एक क्षण आँखोंमें चकाचौंध उत्पन्न करनेके सिवा और कुछ न कर सकीं। मेरा जीवन अन्धकारमय हो गया। फिर पश्चात्ताप हुआ कि क्यों यह कर्म किया, क्यों यह दुर्बलता प्रकट होने दी?—तभी मैंने समझ लिया कि मेरी वेदनाका शमन इस चमक-दमकसे न होगा।

सीता—रावण!

रावण—सीता, मेरे ऊपर तुम्हें करुणा नहीं उत्पन्न होती? कुछ कष्ट पहुँच रहा है मुझसे?———

सीता—(कष्टसे) नहीं, तुमने इतनी आतुरता क्यों दिखाई?

रावण—मैं यह वेदना न सह सका। तुम्हें पानेके लिए अपना जीवन, अपनी कीर्ति, अपना राज्य, अपना सर्वस्व, जूएपर लगा देनेकी इच्छा हो गई। सीता, मुझे कुछ भी नहीं मालूम पड़ता है। नहीं समझ पाता हूँ। एकदम अथाह ही अथाह मालूम पड़ता है।

सीता—इतनी दीनता क्यों?

रावण—सीता, अपना हृदय बन्द ही रखोगी? मुझे अपनाओगी नहीं?

सीता—रामको कितना कष्ट पहुँचेगा, तुमने सोचा है?

रावण—(बहुत कष्टके साथ) आह! क्या करूँ सीता, उस दिन पचवटीमें तुम लोगोंको देखा। ओह! कितना आदर-सत्कार किया तुम लोगोंने।—तुम लोगोंके आतिथ्य, आनन्द और उस

अपूर्व प्रेमने मुझे कितना आकर्षित किया ? मनमे सोचा—बस, यह दर्शन ही काफी है । उस दिन मैंने तुम्हारे निर्मल-प्रेमका स्वरूप देखा । —उसी तसवीरको हृदयमें छिपाकर, मनोरथोंको तिलाजलि देकर, मै लका चला । मैंने जीवनके भविष्यकी ओर दृष्टि डाली तो एकदम शून्य-सा, निस्तेज-सा, अन्तहीन मार्ग सा दिखाई पड़ा । सारे विश्वकी महत्ता आकर मेरे हृदयके उस चित्रमें समा गई । उसीका बार बार दर्शन कर जीवन बिता दूँ, यह निश्चय कर लकाका रास्ता पकड़ा ।

सीता—तब ?

रावण—तब, मेरी बहिन प्रसूना मिली । उसने मेरे हृदयके चित्रको निकाल कर फेक दिया । मेरा मार्ग बदल दिया । उसने तुम्हारी बाते सुनी थीं । उसका कहना था कि तुम्हारे हृदयके अन्तर-प्रदेशमें मैं विराजमान हूँ । बस, मैं पूरा पूरा बदल गया । मुझमें स्वार्थका अकुर पैदा हुआ । पुन जीवनमें ज्वाला दिखाई पड़ने लगी । बस, मैं अपनेको न रोक सका । आँखें बन्द कर एक वेदनाके साथ निर्णय कर लिया,—जीऊँगा तो तुम्हारा होकर,—मरूँगा तो तुम्हारे लिए । अब भी अगर तुमने मुझे पूरा न समझा हो तो अब मैं आँधीके वेगसे अपना सर्वस्व प्रेम-देवताके चरणोंमें समर्पित कर 'सीता सीता' जपता हुआ भस्मीभूत हो जाऊँगा । क्या तब भी यह देवी उस राखमेंसे एक चुटकी लेकर अपने माथेमें न लगाएगी ?

सीता—(बहुत देर बाद) ओह, कितना साहसी है तुम्हारा हृदय !

(रावण आतुरतासे सीताकी आँखोंमें देखता है ।)

सीता—(कुछ सोचती हुई) बेचारी तुम्हारी बहिनका उस दिन बड़ा अपमान हुआ !

राव०—सीता, इस प्रणय-जीवनमे मान-अपमान, हार-जीत कोई चीज नहीं।

सीता—रावण, इधर देखो। (रावणकी आँखोमे देखता है। रावण उस दृष्टिसे उन्मत्त हो जाता है।) क्यो, मैने तुम्हारा हृदय नहीं समझा? तुम क्या समझते हो? (रावण अनजान ही आगे बढ़ आता है।) प्रेमके वास्तविक स्वरूपको समझो। देखो, तुमको प्रेमने रास्ता दिखाया है। तुम धन्य हो।

राव०—(आतुर भावसे) सीता!

सीता—(धीरेसे) तुमने सत्य कहा है,—प्रेममे हार जीत नही। प्रेम कष्ट-दायक है। प्रेम नटवर मूर्ति है।

(नि श्वास लेती हुइ गूढ़ दृष्टिसे देखती है।)

राव०—(दीर्घ साँस लेकर सिर झुकाता है। मानो हृदयके भीतरसे बोल रहा हो।) सीता, जबसे तुम्हारी यह आश्चर्यमयी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी तभीसे मेरा जीवन एक उन्मत्त वेदना सा बन गया। अब कही कष्टमे निहित सुखको मै समझ सका हूँ। सुखके सिवा और सब-कुछसे अपरिचित रावणने अब दु खकी खोज करना सीख लिया है। दु खके अन्तरकी गभीरता और गहराईको आज तुम्हारे वर-स्वरूप पा रहा हूँ। सीता, आजका मेरा जीवन धन्य है। अब जीनेकी जरूरत नही। सीता, इस स्थितिके बाद जीवन नहीं चाहिए।

सीता—(कम्पित स्वरसे अत्यन्त करुणा पूर्वक) रावण!

राव०—(सिर उठाकर देखता है। उसकी दृष्टि सीताकी आँखोंमे गड़-सी जाती है। उन्मत्तकी भाँति—) सीता, सीता, सीता!—

ये आँखे मेरी न होगी तो मैं कैसे जीऊँगा ? सीता, ये आँखे सृष्टि-रहस्यका उद्घाटन करती है।—आह, कैसा प्रकाश है! यह कैसा प्रकाश है साता! यह सुधाकरकी शीतल रश्मि है अथवा हृदयको भस्म करनेवाली प्रणय-ज्वाला? क्या है इस दृष्टिमें, अमृत या हालाहल? सीता, मुझे अपने इच्छानुसार चलाओ। मैं तुम्हारा भृत्य हूँ।

सीता—रावण, इन वासनापूरित आँखोको खोलो। मुझे पूरी तरह समझो।

रावण—सीता, मेरे हृदयमे एक परिवर्तन हो रहा है जो मेरी समझमे नही आता है। ओह, तुम्हारा आँखे! रक्तिम ज्वालाभिभूत हो कितने प्रणय-ससार तुम्हारी इन आँखोमे घूम रहे हैं! कितनी अभिलाषाएँ दग्ध हो रही है उस ज्वाला-जालमें!——कैसा प्रणय ताडव हो रहा है!——सीता, अब अपनेमे दग्ध हो जाने दो इस रावणको!——सीता, तुम्हारी आँखोमेसे मैं अपनी दृष्टि हटा भी नही सकता हूँ और उसमे विलीन भी नहीं कर—

(रावण अपनी आँखे हाथसे बँद करना चाहता है। सीता अपने हाथसे उसका हाथ रोक दती है। रावणके हाथ नीचे गिर जात हैं।)

सीता—रावण, व्याकुल मत होओ,—समझो,—सोचो। निर्मल मनसे, निश्चल दृष्टिसे, सत्यका अवगाहन करा।

रावण—क्या सीता?

सीता—स्त्री-हृदयके विश्व-प्रेमको स्वीकार कर सकते हो?—कोई स्वीकार कर सकता है?

रावण—क्या कहा?

साता—रावण, सृष्टिके इस रहस्यको यदि समझ सको तो शायद तुम्हारा यह दृष्टि-कोण बदल जाय।

रावण—(घबराहटके साथ) सीता, क्या मेरे लिए नया तेजो-मार्ग बना रही हो ? सीता, मुझे उस रास्ते चलाती हो ?—

सीता—(धीरतासे) रावण, शायद स्वार्थ रहित प्रेम पुरुषोंकी कल्पनाके बाहरकी वस्तु है। इसीलिए पुरुषका हृदय कामना-रहित प्रेम करना नहीं जानता।—परन्तु, स्त्रीकी सृष्टि दूसरे तत्त्वोंसे हुई है। स्त्री उसी प्रेमको अधिक चाहती है जिसे वह दान करती है। स्वार्थपूर्ण प्रेम-वाछा उसके हृदयमें कम,—बहुत कम, रहती है। स्त्रीत्वका यह रहस्य ही शायद इस विचित्र विश्वका कारण है।—

—ऐसा कोई स्त्री हृदय न होगा जो प्रेमीके प्रेमका आदर न करे। और इसी कारण वह प्रेमी-पुरुषके ईर्ष्याका कारण भी होता है। पुरुष स्त्रीके इस विश्व-दर्शनको,—विश्व-प्रेमको, नहीं सहन कर सकता। पर, इस विशालतामे वह सकीर्ण स्वार्थ निन्द्य ही होगा। (रावण पागलोंकी भाँति निःश्वास लेता हुआ सीताकी ओर देखता है।) रावण, सारी वासनाओंको तिलाजलि देकर इस प्रणय ससारमे आ सकते हो ?———इस शरीर-सीमाको पार कर जानेवाले प्रेममे राम या रावण,—यह प्रश्न ही नहीं उठता। रावण, सुनो, समझो।

रावण—(कसकर आँखे मूँद लेता है) सीता, मेरे अभ्यन्तरका सब कुछ बदल रहा है।—ऐसा परिवर्तन हो रहा है जिसे मेरी बुद्धि नहीं ग्रहण कर रही है।

सीता—रावण, इधर देखो,—रावण !

रावण—सीता, तुम्हारी चुम्बक-सी दृष्टि मेरे हृदयमें,—सीता,

सीता !—तुम्हारी इच्छामें, तुम्हारी सृष्टिमें, दूसरा ही रावण तैयार हो रहा है।—इच्छा, सीता, तुम्हारी इच्छा———

सीता—इधर देखो रावण !

रावण—(पागलकी तरह) नहीं देख सकता सीता, नहीं देख सकता। तुम्हारी दृष्टिके आकर्षणसे इस शरीरको रोक भी नही सकता और उत्सर्ग भी नहीं कर सकता।

(सीता रावणके हाथ उसकी आँखोंपरसे हटाती है।)

रावण—(सिर झुकाते हुए आँखे खोलकर, पागलोंकी तरह जोरसे—) सीता, तुम्हारा रावण—

(एक बार हिलकर सीताके हाथोंपर अपना सिर टक देता है। साँस जोर जोरसे चलने लगती है। उसका सिर सीताक हाथोंपरसे खिसककर पैरोंके पास गिरता है। सीता शान्तिपूवक उसका सिर अपनी जाँघपर रखती है।)

रावण—(कुछ देर बाद, मूर्छितावस्थामें ही) सीता !

(रावणकी ऑखोंस अश्रु धारा चलती है। सीताकी आँखोंसे भी दो बूँदें रावणकी आँखोपर गिर पड़ती हैं।)

रावण—(मूर्छितावस्थामे ही) सी ता !

सीता—(मानो सारे विश्वका उच्छ्वास लेकर) रावण !

छठा दृश्य

[प्रात काल । हरे हरे तोरणो, पुष्प मालाओ तथा धवल दीवारोसे लकापुरी मानो उत्सव मना रही है । सौधोंपर जयपताकाएँ अलस गतिसे लहरा रही हैं । जय ध्वनि या शोर-गुल कहीं कुछ नहीं है । नि शब्द । नगरके बाहर रणक्षेत्रके समीपका स्थान । एकत्र लकडियोसे दावाग्निकी तरह ज्वालाएँ निकल रही हैं । उस ज्वालास कुछ दूरपर दीन व्याकुल राम । रामका बाँइ आर अश्रु पूरित लोचनो वाले लक्ष्मण, उदास चेहरा लिये हनुमान । कोइ कुछ नहीं बोलता । अग्निदेव तीव्र रूप धारण किये अपनी ज्वालाएँ पसार रह हैं । कुछ दूरपर लकापुरवासी चित्रवत् खडे तमाशा दग्व रहे हैं । अशोक वनकी ओरस सीता आती हुई दीख पडती है । सिर झुकाय विभीषण धीरे धीरे आगे चल रह हैं,—मानो किसी भारसे भूमिमे धँसे जा रहे हों । सीताके मुँहमें एक अप्रतिम कान्ति,—जा सूय-चन्द्रमे भी नहीं दीखती, झलक रही है उसकी आँखोमे गभीरता निर्मलता और शाति है, तथा पद सचालनमें धैर्य-स्थैर्य । सूक्ष्म दृष्टिसे दखनेपर मालूम होता है मानो वह भूतलको पवित्र करनेको अवतीर्ण हुई है । सीता अचलको उँगलियोसे ठीक करती हुइ अग्निक पास रामसे कुछ दूर रुककर ज्वालाओका देखती खडी हाती है ।—कुछ देरतक भयकर निस्तब्धता ।]

सीता—लक्ष्मण, मैं अपनी पवित्रताके प्रमाण-स्वरूप अग्नि परीक्षा ही नहीं, कहो तो अग्निमे अपनेको होम भी दूँ ।

राम—(सिर झुकाकर) सीता, एकके बाद एक आनेवाली ये विपत्तियाँ मुझे कितना दु ख देती है, यह तुमसे छिपा नहीं है । तुम यह भा जानती हो कि कर्त्तव्य समझकर ही मै रावण-सहारके लिए तैयार हुआ था ।—तुम्हार रामके हृदयमे किसी तरहका अन्य नीच भाव न था । वह निर्मल था । जिस महत् आदर्शको प्रजाके हृदयमे बोनेका सकल्प उस दिन स्थिर किया था, उसी आदर्शके लिए रावण-सहार जैसी वेदना भी मुझे सहनी पड़ा,—सीता, ओर उसीके लिए यह—(रुद्धकठसे) सीता !—

(सीता क्षणभर निश्चल तिरछी दृष्टिसे रामको देखती है ।)

राम—(धीरजके साथ) सीता, तुम्हारे रामके हृदयमें द्वेषके लिए, सशयके लिए, स्थान नहीं है, यह तुम जानती हो ।—

(सीता सिर हिलाती है ।)

राम—जनतामें जिस आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिए कल शामको रावणकी चितामे आग लगाई थी, उसी कार्यके निमित्त अभी—(गद्गद स्वरसे)—अभी, इन काष्ठोको प्रज्वलित किया है । सीता, तुमसे पहले तुम्हारा राम अग्निमें प्रवेश करेगा । सीता, तुम्हारे साथ तुम्हारे रामकी भी परीक्षा हो रही है । तुम्हारे कष्टोसे यह हृदय कितना दु ख पा रहा है ! रावणके अवसान-कालका यह वाक्य, 'राम, अब भी सीताको सुखी बनाओ' कभी न बुझनेवाली ज्वालाकी तरह मेरे हृदयको जला रहा है ।

सीता—रावणको समझ सके ?

राम—अच्छी तरह समझ लिया । त्यागमूर्ति वीर रावणको समझना कठिन नहीं है । अवसानकालमें, मूर्छितावस्थामे भी, 'सीता ! सीता !—प्रणय-ताडव' आदि चिल्लाता हुआ वह तुम्हारा नाम ही जपता रहा ।

सीता—होशमे आकर बोला था ?

राम—हाँ, कुछ होशमे आकर मुझसे उसने पूछा, 'राम, मुझसे द्वेष करते हो ? ईर्ष्या करते हो ?' मैने कहा, 'रावण, न मेरे हृदयमे द्वेष ही था न विजयाकाक्षा ही थी ।—यह सब होनहार था ।'

(राम सिर उठाकर सीताको देखते हैं, सीता स्वीकार भावसे सिर हिलाती है ।)

राम—अपना राज्य, अपनी कीर्ति, और खुद अपनेको तुम्हारे लिए,—प्रेमादर्शके लिए, उत्सर्ग कर देना ही अपना आदर्श,—अपनी

विजय, बतलाता हुआ (सीता नि श्वास लती है) मेरी जाँघपर रखे हुए अपने सिरको यत्नपूर्वक हिलाकर, अपने हाथ मेरे गलेमें डालकर, 'राम ! विजय किसकी ? तुम्हारी या मेरी ? नही, यह प्रेमकी विजय है।—मै पराजित होकर नही मर रहा हूँ। विजयी होकर मुक्ति लाभ कर रहा हूँ। प्रेम जीत रहा है और प्रेमके अन्दर मैं विजयी हो रहा हूँ। अशोक, आनन्द, सीता ! सीता !'—कहता हुआ, तुम्हारा नाम जपता हुआ, स्वर्ग सिधारा। अन्तिम समयमे अपना हृदय खोलकर दिखाया और मेरा हृदय टूक टूक करते हुए (सिर झुकाकर) बहुत दीनतासे प्रार्थना की, 'राम, सीताको अब भी सुखी बनाओ। प्रजा निन्दारोपण करेगी, उसको ध्यानमे मत लाना।' मै भीतर ही भीतर दुःखके आँसुओंसे भीग गया। कितना आदर्श प्रेमी था ! अब भी इस ज्वालाको देखकर अश्रुपूरित नयनोंसे रावणकी चिता मेरे हृदयको जलाती हुई मानो धिक्कार पूर्वक कह रही है, 'राम, क्या अब भी सीताको सुख न दोगे ?'—सीता, रावण यदि जीवित होता ! और नहीं कुछ, तो, इस ज्वालाको अपने ऑसुओंसे ही बुझाता। (सिर उठाकर) जीता होता तो इस अग्नि परीक्षासे बहुत दुःखी होता।

सीता—(सिर झुकाकर) हॉ, बहुत दुःखी होता।

(सीता अग्निमें प्रवेश करती है। अग्निदेव अपनी सहस्र भुजाओंका फैला देते हैं,—सीताको जलानेके लिए नही, बल्कि उस दुष्प्राप्य गौरवका आह्वान करते हुए जो अभी उन्हें मिल रहा है।)

(पर्दा—धीरेसे)

समाप्त

कैफियत

रामायणको केवल पूजाकी वस्तु मानकर पढ़नेकी जरूरत भी नहीं समझने वाले और उसे भी देव मूर्तिके साथ रखकर चन्दन-फूल चढ़ाकर मोक्षकी आशा रखनेवालोंसे मैं कुछ न कहूँगा। मेरा यह प्रयास केवल उन सज्जनोंके लिए है जो 'पतिव्रता सीता' और 'राम राज्य'को अपना लक्ष्य बनाकर उन्हीं आदर्शोंकी लीकपर अपने दैनिक जीवनकी गाड़ी खींचनकी इच्छा रखते हैं और सीता रामके जीवनको अर्थयुक्त समझते हैं। वे पूछ सकते हैं कि (१) वाल्मीकिकी अद्भुत रचनामें यह इच्छानुसार परिवर्तन क्यों किया गया? (२) सीता-रामके चरित्रका,—जो उत्कृष्ट और दृढ़ आदर्शके रूपमें समाजमें प्रचलित है, नया अर्थ कल्पित करके सम्पूर्ण विश्वासके साथ एक आदर्शके पीछे चलनेवाली जातिके हृदयमें व्यर्थ आंदोलन पैदा करना कहाँ तक उचित है? और (३) हृदय चाहे जितना भी सहानुभूति पूर्ण हो, फिर भी प्रेम करनेवाले पर पुरुषके प्रति प्रेम दिखाना, उसका सिर अपनी जाँघपर रख लेना, आदि बातें क्या सीताके पातिव्रत्यपर कलंक आरोपित करना नहीं है?

पहले आक्षेपका उत्तर यह है कि कवि निरंकुश होता है। वह मूल कथाका अनुसरण करते हुए कथाकी नवीन उपयोगिता दिखाने तथा उसका नये सिरेसे अर्थ लगानेमें पूर्ण स्वतंत्र है। निस्सन्देह वाल्मीकि महाकवि थे। उनकी काव्य कला उत्कृष्ट थी। पर इतनेसे ही उनकी रचनाकी समीक्षा करना या उनकी सृष्टिसे भिन्न प्रयत्न करना अपराध नहीं हो सकता। अपने समयमें आदर्श समझे जानेवाले भावोंका कथामें समावेश करने तथा कथाके पात्रोंका चरित्र आदर्श प्राय बनानेका वाल्मीकिको जितना अधिकार था उतना ही हरएक कविको है।

रामायणके आसेतु हिमाचल प्रचार और आदर पानेमें उसके काव्य, धर्म,

कथा, इतिहास आदिके सिवा और भी दो बातोंने योग दिया है। पहले मैं उन्हीं दो बातोकी समीक्षा करूँगा।

अ—एक तो लोगोंका यह समझना कि सुदर काडमें मोक्ष-साधक बीजाक्षर हैं—

इस बातको माननेवाले यदि रामायणकी कला और कविताको छोड़ दें तथा सुदर-काडकी गणना मत्र शास्त्रमें करने लगे, तब तो एक बात भी हो। लेकिन, सिर्फ इसीलिए रामायणका यह गौरव नहीं मिल सकता जिसे आज वह प्राप्त कर रही है।

आ—यह धारणा कि रामके पैदा होनेके पूर्व ही वाल्मीकिने रामायण तैयार की—

जिन व्यक्तियोंने यह समझकर कि ऐसा करनेसे आदि-कविकी इज्जत बढ़ेगी—उनके सिर यह अपवाद लगाया है, मेरी समझमें उन्हींके माथे इस कलकको मढ़ देना वाल्मीकिके साथ न्याय करना होगा। क्यो कि, एक खास उद्देश्यसे लिखे जानेपर भी रामायण प्रतिपादित उन्नतादर्श, धर्माधर्म निर्णय, अद्भुत कल्पना, मधुर कविता, कथा प्रतिपादन शैली आदिका देखकर वाल्मीकिकी अद्भुत मेधाशक्तिका पता लगता है। यदि रामसे पहले ही यह कथा कल्पित की गई होती तो वाल्मीकि जैसा कलाविद् और मेधावी कवि अपनी रचनामे त्रुटि क्यो रहने देता?

वाल्मीकिके गौरवके प्रश्नको छोड़ देनपर भी ऊपरकी बातपर विचार करते समय प्रसगवश एक घटना याद आ जाती है। इँग्लैंडके एक लेखकने एक उपन्यास लिखा और कुछ दिन बाद वह एक फ्रेंच महिलाके हाथ मे पड़ा। उसको उपन्यासके प्रत्येक पृष्ठमे अपना ही जीवन अंकित दिखाई पड़ने लगा। उक्त महिलाकी उस समयकी स्थितितक उपन्यास अक्षरश मिलता गया। बाकी भाग भी वह बड़ी आतुरतासे पढ़ गई। उस दिनसे उस स्त्रीका जीवन उसी उपन्यासकी तरह चलने लगा और उस विषादान्त उपन्यासकी तरह ही उसका जीवन विषादान्त हुआ। मरनेके समय उसने कहा कि उक्त उपन्यास ही मेरे इस तरहके अन्तका कारण हुआ।

रामायणकी रचना भी यदि रामसे पहलेकी मानी जाय, तो कहना पड़ेगा कि उस फ्रेंच युवतीकी तरह कमजोर दिमागवाले एक राजकुमारने वाल्मीकीय रामा

यण पढ़ी और वह वैसा ही हो गया। पर रामकी इज्जत करनेवाले इसे कभी पसन्द न करेंगे।

इसलिए वाल्मीकि रामायणके ही कुछ भागोंके आधारपर मूढ़ विश्वासोंको एक ओर रखकर विवेकके साथ पक्षपात हीन तर्क करनेपर हम इन निर्णयोंपर पहुँचते हैं—

'जैसा कि लोग समझते हैं, रावण दुष्ट राक्षस नहीं था, वह बड़ा सज्जन और भला था।' इसपर प्रश्न उठता है कि यदि ऐसी बात थी तो उसने पर दारा सीताका अपहरण क्यों किया? उत्तरमें कहा जा सकता है कि राक्षस धर्मके अनुसार उसका यह कार्य उचित था। रावण ही सीतासे कहता है—

स्वधर्मो रक्षसा भीरु, सर्वदैव न सशय ।
गमन वा परस्त्रीणा, हरण सप्रमथ्य वा ॥

—सुदर-काड, सर्ग २०

अर्थात् हे भीरु, पर-स्त्री गमन और बलपूवक पर-स्त्री हरण राक्षसोंका सदाका स्वधम है, इसमें सन्देह नहीं।

इसको ध्यानमें रखकर ही न्याय विचार करना होगा। आजकल सामाजिक नियमोंके अनुसार उस कालका विचार करना असगत है। आजकलके 'पिनल कोड'के अनुसार विचार किया जाय तो नाबालिग लड़कीको उसके पिताके अधिकारसे उड़ा लानेके अपराधमे भगवान श्रीकृष्णको, दफा ३६के अनुसार, सात वर्षकी सजा भुगतनी पड़ेगी। इसी तरह, अपनी प्रेमिका बालिकाको उसके घरसे उड़ा लानेवाला कोई व्यक्ति अपनी सफाइमे यदि रुक्मिणी हरणकी चर्चा करे, तो जज अवश्य ही हँसेगा। आजकलकी दृष्टिसे विचारा जाय तो कुती, द्रौपदी आदिका पतिव्रत, तथा महाभारतके बहुतसे महापुरुषोका जन्म भी, आदरास्पद या आदर्श नहीं होगा। इसलिए जिस समाजकी हमें समीक्षा करनी है, उस समाजके प्रचलित धर्मों और नियमोंको ध्यानमें रखकर ही वैसा करना उचित होगा। इस नीतिका अवलबन कर अब मैं रावणके कार्योंकी आलोचना करूँगा।

सीताकी आँखे उन्मादक थीं। रावण सीताके प्रेममें उन्मत था। अपनी प्रेमिकाको किसी तरह भी प्राप्त करना राक्षसोंकी दृष्टिमें पाप न था। इसलिए, उसने सीताका अपहरण किया। उसमें नीच कामना न थी। क्यों कि, यदि

उस सीतासे प्रेम न होता, सीताको वह गौरवकी दृष्टिसे न देखता होता, तो, जब सीता लकामें निस्सहायावस्थामें उसके अधीन थी तब, वह उसकी इज्जत कदापि न करता, सीताकी सब तरहसे रक्षा न करता तथा सीताके मिलनेपर किसी तरहकी जबर्दस्ती किये बिना भी न रहता। इन बातोका प्रमाण वाल्मीकि रामायणके सुदरकाडका बीसवाँ सर्ग है। अशोक वनमे वह सीतासे कहता है— 'कामये त्वा विशालाक्षि—' हे विशाल नेत्रोंवाली, मैं तुम्हे प्यार करता हूँ। अपने अधीन रहने पर भी, प्रेमसे दग्ध होते हुए भी, वह कोइ अत्याचार नहीं करता है। देखिए—

एव चैतदकामा तु न त्वा स्पृश्यामि मैथिलि।
काम काम शरीरे मे यथाकाम प्रवर्तताम् ॥ ६

—सुदरकाण्ड, सर्ग २०

अर्थात् ह मैथिलि, मेरे शरीरमे कामदव भल ही इच्छानुसार सचार करे, पर इच्छारहित तुम्हारे शरीरका मैं स्पश भी न करूँगा। कितना न्याय-सगत बर्ताव है! इतना ही नही, वह कवल शरीर सुखकी पूर्त्ति हा नहीं चाहता था। बल्कि वह प्रार्थना करता था "भव मैथिलि भाया म"—सीता, तुम मेरी पत्नी बनो। इसपर भी यदि पाठक समझे कि सीताको धोखा देनेके वास्ते ऐसा कहा होगा, ता मैं और एक जगहस रावणक विचार उद्धृत करूँगा।

राम जब वानर-सेनाक साथ युद्धके वास्ते तैयार हुए तब रावणने अपने मत्रियो तथा बधु मित्रोंकी एक सभा की और उनसे पूछा, "मैंने अपने स्वार्थक लिए सीताका अपहरण किया। उसका पति अभी युद्धक लिए आया है। इस युद्धमे मेरा ही नहीं बल्कि आप लोगोका भी नुकमान होगा अत आप लोग अपना अभिमत प्रकट कीजिए।"

सा मे न शय्यामारोढुमिच्छत्यलसगामिनी।
त्रिषु लोकेषु चान्या मे न सीता सदृशी मता ॥ १३ ॥
उन्नास वदन वल्गु विपुल चारुलोचनम्।
पश्यस्तदाऽवशस्तस्या कामस्य वशमेयिवान् ॥ १७ ॥
क्रोधहर्षसमानेन दुर्वर्णकरणेन च।
शोकसतापनित्येन कामेन कलुषीकृत ॥ १८ ॥

सा तु सवत्सर काल मामयाचत भामिनी ।
प्रतीक्षमाणा भर्तार राममायतलोचना ॥ १९ ॥
तन्मया चारुनेत्राया प्रतिज्ञात वच शुभम् ।
श्रान्तोऽह सतत कामाद्यातो हय इवाध्वनि ॥ २० ॥
किं करिष्यामि भद्र व किं वा युक्तमनन्तरम् ।
उच्यता कस्समर्थ यत्कृत च सुकृत भवेत् ॥

—युद्धकाड, सर्ग १२

अथात् उस अलसगामिनी सीताने मेरी सेजपर आनेस इनकार किया है। मेरी दृष्टिमें तीनो लोकोमे सीता जैसी दूसरी कोई स्त्री नहीं है। ऊँची नाक, तथा विशाल नेत्रोंवाली उस सीताका मनोहर मुख दखकर मैं कामाधीन हो जाता हूँ। क्रोध और आनन्दमें समान विवणता लानेवाले तथा दुस्सह शाक देनेवाले कामने मुझ कलुषित कर दिया है। उस विशालाक्षिने अपने भर्ता रामकी प्रतीक्षाके लिए एक सालका समय माँगा है। उस सुदर नेत्रवाली सीताका वह प्रतिज्ञा वाक्य सुनकर सतत कामाघातसे मैं ऐसा श्रान्त हो गया हूँ जैस बहुत दूरसे दौडा आया हुआ अश्व। अब (सब हालत जानकर) जा युक्त हो, शुभ हो, उचित और सुकृत हो,—वह कहिए। मैं वही करूँगा।

इस तरह रावणन बिना किसी दुरावके साफ साफ उनका सलाह ली। सीताके सामने कही गइ बाते यदि धाखेके लिए कही गई थीं, तो पुन उन्हीं बातोको अपने अतरग व्यक्तियोंके सामने सरल भावसे कहनेकी आवश्यकता नहीं दीख पड़ती। अत इन सब बातोंका विचारकर कोई भी सहृदय व्यक्ति यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि रावण सीतासे सच्चा प्रेम करता था और उसके बिना दु खी था।

भोजके 'शृगार प्रकाश' में रावणके बारमें यों लिखा है—

आज्ञा शक्रशिखामणि-प्रणयिनी, शास्त्राणि चक्षुर्नव,
भक्तिर्भूतपतौ पिनाकिनि पद लकेति दिव्या पुरी।

उत्पत्तिर्द्रुहिणान्वये च तदहो नेदृग्वरो लभ्यते ।
साक्षादेष न रावण क नु पुनस्सर्वत्र सर्वे गुणा ॥

अथात् जिसकी आज्ञा इन्द्रके शिरोमणिकी प्रणयिनी है,—अर्थात् जिसकी आज्ञा इन्द्र शिरोधार्य करता है, शास्त्र ही जिसकी आँखें हैं, जो पिनाकी भूत पतिकी भक्तिसे पूजा करता है, जो ब्रह्माके कुलमे उत्पन्न हुआ है,—वैसा यह रावण ही यदि वर न हो सकेगा तो ऐसा वर और कहाँ मिलेगा ?—सब कहीं गुण ही गुण नही रहते ।

इससे भी हम देखते हैं कि 'रावण'का नाम ही अकीर्तिकर हो गया है, वह गुणहीन न था ।

इस नामकी पैदाइशका इतिहास भी हम ढूँढे । 'राव' का अर्थ है, शोर या रुदन । 'राव' करानेवाला रावण ' यह अर्थ स्पष्ट है । यह नाम उसे खिताबके रूपमे बडप्पनके लिए ही मिला होगा । शत्रुओंमें शोर-गुल–'हाहाकार' उत्पन्न करता था, इसलिए 'रावण' नाम उपयुक्त ही है । अगर यह दूषण हो, तो इसमे (शत्रुओंमे हाहाकार उत्पन्न करानेमे) राम ही क्या कम थे ? रामने भी राक्षस कुलमे 'राव' भर दिया था, इसलिए वह भी 'रावण' ही हुए । अतएव ऊपरकी बात ही सच्ची है कि रावण शत्रुओंमे हाहाकार उत्पन्न कराता था । इसका प्रमाण सुन्दरकाण्डमे है—' इत्युक्त्वा मैथिली राजा रावणश्शत्रुरावण ,'—यहाँ स्वय वाल्मीकिने 'शत्रु रावण' रावण कहा है । तो फिर आज इस शब्दका ऐसा बुरा अर्थ कैसे प्रचलित हुआ ? रामके दिग्विजयका गान करते हुए उसके विरोधीको लोक कटक और सहार योग्य साबित करनेके लिए रावण शब्दका बुरे अर्थमे प्रयोग एक कवि कौशल ही है । जैसे कोई समाज सुधारक किसी स्त्रीके बारेमे कहे कि ' इन्होंने विधवा विवाह किया है ', तो उसके कहनेका तात्पर्य यही होगा कि अमुक स्त्रीने समाजके अत्याचारोंके विरुद्ध खडी होकर कुमार्गमे जानेके बदले दूसरा विवाह किया है । लेकिन कोई सनातनी कहे कि इस स्त्रीने विधवा विवाह किया है, तो उसमें व्यगकी ध्वनि आयगी कि यह दूसरे पुरुषको स्वीकार कर धर्मभ्रष्ट हुई है । उद्देश्यके अनुकूल एक ही शब्द भिन्न भिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त हो सकता है । बस, यही हालत 'रावण' शब्दकी हुई है ।

लगे हाथ 'राक्षस' शब्दकी भी परीक्षा हो जानी चाहिए। असल शब्द है—
' रक्षस् ' अर्थात् रक्षा करनेवाला। इसका प्रमाण—

रक्षाम इति यैरुक्त रक्षसास्ते भवतु व ।
यक्षाम इति यैरुक्त यक्षा एव भवतु व ॥

सृष्टिक आदिमे जिन्होंने रक्षाका व्रत लिया वे ' रक्षस् ' कहलाये। अमरने भी राक्षसोंको देवयोनिमे ही गिनाया है—

विद्याधरोऽप्सरो यक्षरक्षोग धर्वकिन्नरा ।
पिशाचो गुह्यक सिद्धो भूतोऽमी देवयोनय ॥ ११

'असुर' शब्द भी एसा ही है। ऋग्वेदके दशम मडलमें कुछ असुर प्रोक्त सूक्त भी हैं। यह सब दखकर विचारनेसे पता चलता है कि रावण शब्दकी तरह असुर, राक्षस आदि शब्द भी भयकरता, क्रूरता आदि गुणोंके साथ प्रयुक्त होते होते इस हद तक पहुँच गये हैं।

फिर वाल्मीकिने रावणको ऐसा दुष्ट क्यों वर्णित किया ? यह स्पष्ट है। रामकी कथाको रामायणका रूप देनेकी जो आवश्यकता हुई, वही आवश्यकता रावणको इस तरह चित्रित करनेकी भी हुई होगी। इस बातको अन्तमें मैं विशदरूपसे साबित करूँगा। उस समयके आर्य अनार्य सघर्षमे आर्य लोगोंद्वारा किये गये कार्योंका समर्थन भी एक उद्देश्य रहा होगा। इसकी भी सत्यताका हम विवेचन करे।

इस देशका भाग्य न मालूम कैसा है कि आजतक जितनी जातियाँ बाहरसे आई सबोंसे यह पराजित हुआ,—कभी अपनी स्वाधीनताकी रक्षा न कर सका। दो सौ वर्ष पहले गोरी जातियोंके हाथ और हजार वर्ष पहले गजनीसे लेकर बाबरतक अन्य मुसलमान शासकोंके हाथ अपनी स्वाधीनता अर्पित कर देना ही इसका प्रमाण है। इतिहासपर विश्वास न रखनेवाला कोई सनातनी भी मूर्खता-पूर्वक, आँखे ब द कर इस बातको अस्वीकार नहीं कर सकता और न तर्कसे किसीके हृदयमे यह बैठा सकता है कि आज विदेशियोंका शासन हमारे कलेजेपर को दो नहीं दल रहा है,—अथवा किसी भी आत्माभिमानी देशभक्तके लिए यह सह्य हो सकता है। इसी तरहका था उस समयका आर्य-अनार्य-सघर्ष।

" द्वयोह प्राजापत्या दवाश्वासुराश्च, तत कनीयसा एव देवा ज्यायसा असुरास्त एषु लोकेष्वस्पर्धन्त । "

अर्थात् प्रजापतिकी दो सतान हैं—देवता और असुर । देवताओंकी सख्या कम है,—असुरोंकी अधिक । विश्वको अधिकृत करनेके लिए इनमें स्पर्धा चल रही है । यह बृहदारण्यक उपनिषत्‌के तीसरे ब्राह्मणका पहला सूक्त है ।

दशरथके समयतक गगाके दक्षिणी किनारेसे दुर्गम दण्डकारण्य प्रारभ होता था । आर्योंने सिंधु और गगाके किनारोंके स्थानोको ही अधिकृत किया था । दण्डकारण्यको पार करनेवाले प्रथम व्यक्ति राम ही हैं । अन्य जगली जातियोंकी तरह आसानीसे वशमें न आनेवाली तथा आय धमका खडन करनेवाली,—यही नहीं, बल्कि जोर-शोरसे आर्योंसे टक्कर लेनेवाली, युद्ध निपुण रावणकी जातिको हराकर वश करनेवाले रामकी तत्कालीन आय-ससारने कितनी प्रशसा की होगी ? रामकी कीर्तिको स्थायी रूप दकर अपनी आर्य प्रतिभा और शूरताको स्थायी रूप देनेके लिए उस समयके लोगोने बहुतसे स्मारक निर्मित किये होंगे । नहीं तो, इस मामूली कायक लिए रामका इतनी प्रशसा प्राप्त करना तथा नायकमें अनक त्रुटियोंके होते हुए भी रामायणका आसेतु हिमाचल इतना पवित्र माना जाना क्यों कर होता ?

रामायण कालमें आरभ किया गया वह दिग्विजय महाभारत कालमें दूसरे रूपमे ही दिखाई दिया । जिस तरह अकबरके समयमें मुगलो और राजपूतोंमे शादी ब्याह होने लगा था, उसी तरह महाभारत कालमे आय और इस देशके वासियोंमें भी शादी ब्याह होने लगा । लोग विरोध भाव भूलकर 'एक' जातिके रूपमें तैयार हो गये । क्रमश आर्योंने भी इस देशवालोंके धम, आचार विचार, नीति आदिका थोडा थोडा अनुसरण शुरू किया । इसलिए तो श्रीकृष्णका रुक्मिणीसे, भीमका हिडिम्बासे और अर्जुनका सुभद्रा तथा उलूपीसे आसुरी विवाह आर्योंको स्वीकृत हुआ ।

इस तरह अनार्योंसे मिलते हुए भी सारी अनार्य जातियोंको आय सभ्यताके नीचे सगठित करना तथा 'आर्य' शब्दमें सब शिष्टता, मर्यादा आदिका समावेश करना जारी रहा ।

आज जिस तरह गोरी जातिके मिश्रणसे पैदा हुए 'ऐंग्लो इडियन' अपनेको गोरी जातिकी सतान कहकर गर्वका अनुभव करते हैं उसी तरह आर्य—

अनार्यसे पैदा हुई जातिने भी अपनेको 'आर्य' कहनेमें अपना गौरव समझा। इस तरह सारा भारतवष आर्य मय हो गया। क्रमश आर्यों द्वारा किये गये सब अच्छे-बुरे कार्योंका समर्थन हुआ और अनार्योंके आत्म-रक्षाके प्रयत्न और आत्माभिमान आदि गुण 'राक्षसत्व' और 'अत्याचार'के नामसे अभिहित हुए। अन्तमें, 'आर्य' शब्द सब सद्गुणोंसे पूर्ण और 'अनार्य' शब्द उसके विपरीत सब दुर्गुणोंकी खान होकर प्रचलित हो गया। आज भी गोरी जातियाँ 'नीग्रो' जातिको 'निगर' Nigger कह कर पुकारती हैं। Nigger का मतलब काला हा नहीं वरन् नीच और घृणित भी है। 'अनार्य' शब्द भी एसा ही हुआ।

इस आर्य अनार्य शब्दका विरोध कहाँ तक विश्वसनीय है, इसके लिए मैं आजकलकी एक प्रचलित बात पेश करता हूँ। गोरी जातिने काली या रगीन (Coloured) जातियोंका बहुत भाग अपने वशमें किया है। उनके उस कार्यपर कोई दोषारोपण न करे, इसलिए काली जातिकी सभ्यता और धर्मका घृणित, नीच, जगली कहकर प्रचार किया जा रहा है।

मान ले कि गारी जातियोंका प्रयत्न सफल होगा। तब मिस मेयोद्वारा भारत और फिलीपाइनके बारेमें, तथा अमरीका आफ्रिकानिवासी गोरी जातियो द्वारा नीग्रो जातिक बारेमें, लिखी गई बाते स्थिर होकर, रामायणमे वर्णित अनार्य धर्म और आचारकी तरह, भारतीय सभ्यता भी नीच समझी जाने लगेगी। उस समय काली (रगीन) जातियाँ निश्चय ही असुरो और राक्षसोकी तरह ससारका कटक होकर, नीच होकर, नाशकी अधिकारिणी होगीं। गोरी जातियोद्वारा किय गये अत्याचार और बलात्कार विश्व-कल्याणार्थ समझ जान लगेगे।

वाल्मीकि यदि आर्य अनार्य किसी पक्षके न होते, तो रावणका असली नाम क्यों न लिखते? कोई कितना भी अत्याचारी या दुष्ट हो पर वह अपना उतना विकृत नाम नहीं चुन सकता। भला राक्षस स्त्रियोंके नाम तो देखिए,—दुर्मुखी, विकटा, चडोदरी, अजामुखी, इत्यादि। यदि कहा जाय कि उन लोगोंके प्रति घृणा उत्पन्न करनेके लिए कविने वैसे वैसे नामोंकी कल्पना की है, तो सत्यसे दूर न होगा। ठीक इसी तरह रूस जापान युद्धके समय रूसवाले जापानियोंको 'बनर-मुँहा' (Monkey Faced) कहते थे।

इन सबके अलावा और भी एक रहस्य है। वाल्मीकिका समय ई० पू०

२२८०, अथात् आजसे ४२१४ वर्ष पहले माना जाता है। वाल्मीकिने वदामे व्यवहृत छन्द नियमका व्यवहार किया और अनुष्टुप् छन्दोका उपयोग कर कवितामें नया मार्ग प्रशस्त किया। आज भी कविता-क्षेत्रमे रामायणको जो स्थान प्राप्त है वह महाभारतका नहीं। रामायणकी इतनी प्रख्यात शैली और कल्पना धारा ही अब तक सब दशाकी सब भाषाओका आदश रही। उस समयकी काव्य-कलामें प्रधान स्थान मिला है उत्प्रक्षाको। इसलिए, राइको पवत और पर्वतको राइ करने तथा चरित्र नायककी प्रशसाके लिए शत्रुका राक्षस, लोक-कटक आदि कहकर नाना तरहसे दूषित करनकी प्रथा भी चल पड़ी। यह बात सिर्फ वाल्मीकिका रचनामें ही नही, वरन् ३१२० वष पूव ग्रीस देशके कवि होमर की रचना 'ईलियड' 'आडेसी' 'बट्रकोमिया मेकिया' आदि ग्रन्थोमे भी पाई जाता है। बहुतसे देशोको जीतकर राज्य करनेवाल वीरकी कथा 'आडसी' रामायणकी तरह ही है। उसमे वर्णित नायक नायिका भी मामूली मनुष्यकी तरह नहीं वरन् दैवी पुरुषकी तरह मालूम पड़ते हैं। आजकल हमारे पडित लोग जिस तरह वाल्मीकि कठाग्र करत हैं, उसी तरह बहुत काल पूव ग्रीकके पडित भी होमरकी रचनाएँ कठाग्र करते थ। ग्रीक भाषा प्राय होमरके काव्यो की पुत्री ही कही जाती है। होमरका वणन, उसकी कथा वस्तु, उसकी शैली हम लोगोंके पुराणोंकी तरह ही है। उस समयका भाव जगत् वैसा ही था। उस समय वैसी रचना ही आनन्ददायिनी होती थी। उस कालकी वही श्रेष्ठ कला थी।

यही नहीं, मनुके समयमें भी राजाको लोग विष्णुका अंश मानते थे— 'ना विष्णु पृथ्वीपति'। जब मामूली राजा ही विष्णु हुआ तो सार ससारका उद्धार करनेवाल अवतारी राजाका साक्षात् विष्णु कहना कौन सी आश्चर्यकी बात है? फिर वैस राजाके विरुद्ध खड़ा हानेवालेका राक्षस, लोक कटक, शाति भग करनेवाले (Dangerous to Public tranquillity) के रूपमें बदल जाना स्वाभाविक ही है।

वाल्मीकिसे प्रारम होकर पुराणोतक जो विस्तृत साहित्य रचना हुइ, उसका सक्षिप्त तात्पर्य इस तरह होगा—

इन राक्षसोके अत्याचारोंसे चौदहो लोक हाहाकार कर उठते, सातों समुद्र घूर्णित हो जाते, पतिव्रताएँ आर्तनाद कर उठतीं, तपस्यामें विघ्न पड़नेके कारण ऋषि-मुनि ब्रह्मासे प्रार्थना करते, वह पुराणपुरुष विष्णुसे फर्याद करता,—

तब क्षीर-सागरमे लक्ष्मीके साथ योग निद्रामें मग्न महाविष्णु शेष शय्या त्याग कर शख चक्रादि धारण कर आगे आगे चलते, उनक पाछे शेष भगवान् और फिर लक्ष्मी आतीं। सब, भूलोकमें अवतार धारण करते, और अनेक बहान बनाकर उन अत्याचारियोंका नाश करके पतिव्रताओंका पातिव्रत्य, ऋषि-मुनियोंकी तपस्या यज्ञ-यागादि सुरक्षित करते, ससारका उद्धार कर अवतार कार्य पूरा होनेपर फिर योग निद्रामे प्रविष्ट होनेके लिए क्षीर-सागरकी यात्रा करते।

यही कथा विस्तारका ढग था। यही कला थी। किसी भी पुराणको उठाइए, बस, यही सिर दर्द करनेवाला ढग शुरू होगा। इस विधानकी सामग्रियोंमें एक रावण भी था, इसलिए वह राक्षस और लोक-कटक हुआ। इन सब बातोंपर निष्पक्ष भावसे विचार करना ही न्याय होगा। मेरे ऐस निणयका मुख्य कारण यही है।

अब मैं दूसरे आक्षेपका उत्तर दूँगा।

आजकल राम राज्यका अर्थ होता है जिस राज्यमें किसी तरहका अन्याय न हाता हो, नीति और धर्मका पालन होता हो। लोगोंकी धारणा है कि रामका शासन सब तरहस सर्वदाके लिए आदर्श था। यह धारणा कहाँतक सत्य है, इसकी परीक्षा मैं रामायणक आधारपर ही करूँगा।

दस अपराधी भी विना दण्डक छूट जायँ तो छूट जायँ, पर, एक भी निर्दोषी दण्ड न पावे——यह कानूनका पहला सूत्र है। इसे आजका कानून (Law) भी स्वीकार करता है। फिर ससारसे कोई सम्बन्ध न रखनवाले शबूकका मारना, जो निरपराधी था और कहीं जगलके कोनेमें मुक्तिक वास्ते तपस्या कर रहा था, कहाँका न्याय है? किसी कारणस ब्राह्मणक बालकके मर जानेपर उसका कारण शबूककी तपस्या बताना, 'तपस्याका अधिकार ब्राह्मणोंके सिवा दूसरेको नहीं है' ऐसा समझनेवाले अहकारी ब्राह्मणोंके लिए स्वाभाविक ही था। लेकिन, उन घमडी ब्राह्मणोंकी प्रशसा प्राप्त करनेकी आकाक्षास उस निरपराधी, तपस्वा, सरल शूद्रराजकी हत्या करना कहाँका न्याय है? अपनी मुक्तिके वास्त किसी कानेमें बैठकर तपस्या करनेको अपराध बताना क्या जरा भी औचित्यकी सीमाके भीतर आ सकता है? फिर तत्कालीन प्रशसा प्राप्त करनेके लिए निन्दनीय हत्या करनेवाले राम निष्कलक आदश पुरुष कैसे हुए?

एक धोबीने गुस्सेमें आकर गालियाँ देते हुए अपनी पत्नीकी तुलना सीतासे

की—बस, इसी छोटे-स अपराधके लिए रामने उस महापतिव्रता, पूर्णगर्भिणी सीताको,—जिसने उनके साथ अनेक यातनाये झली था,—अनेक विपत्तियाँ सहीं थीं,—जो अपनी आत्माको ही राममय समझकर जीती रही,—क्रूरताके साथ निस्सहायावस्थामे वन भेज दिया। 'उत्तर-रामचरित'मे भवभूतिने इसी अवसरपर वासन्तीके मुँहसे रामको खरी-खोटी सुनवाइ हैं। " ऐ निदयी, बारबार यशके लिए ही हाय हाय करते हो पर, इससे बढ़कर अपयश क्या होगा?" एक धाबीके मुँहसे भी अपनी अकीर्ति न सुननी पड़े, इस हीन आकाक्षाके वशवर्ती होकर रामने ऐसा क्रूर नीच घृणित कार्य किया। एक धाबीका 'वोट' भी सुरक्षित रखनेवाले राम क्या आजकलके लोकल बोर्डों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंके चेयर मैनोसे श्रेष्ठ थे?

विवेचनापूवक विचार करनेस ज्ञात होता है कि राम सिफ कीर्तिके वास्ते जान दते थे। उसक लिए सब कुछ करनेको तैयार रहत थ। सीताके साथ उनका व्यवहार देखिए। वैसी क्लिष्टावस्थामे भी, जिस सीताने रावणसे एक वषका समय माँगा, जो पतिके विजयाथ तपस्या करती हुई निर्निमेष दृष्टिसे प्रतीक्षा करती रही,—उस सीताको रावण वध हो जानेके बाद ही रामन विभीषणद्वारा खबर भेजा। तब—

> " विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता।
> उदैक्षत मुख भर्तु सौम्य सौम्यतरानना ॥ ३४ ॥

—युद्ध-काण्ड सर्ग ११४,

अथात् पतिका देवता समझनेवाली और अतिशय सौम्य मुखवाली वह (सीता) आश्चर्यसे, आनन्दसे, और स्नहसे अपने भर्ताका सुदर मुख दखती रही। फिर 'सा वस्त्रसरुद्धमुखी लज्जया जनससदि' वह लज्जाक कारण मुँह वस्त्रसे ढँककर जन समाजके सामने खड़ी हुइ। उस समय रामका ' हृदयान्तर्गतक्रोधो व्याहर्तुमुप चक्रमे ' हृदयान्तर्गत क्रोध दिखानेके लिए तैयार होना कितना नीच, कितना अपमानकारी और कितना असमयोचित है?

> ' एषाऽसि निर्जिता भद्रे शत्रु जित्वा रणाजिरे।
> पौरुषाद्यदनुष्ठेय मयैतदुपपादितम् ॥ २ ॥

गतोऽस्य तममर्षस्य धर्षणा सम्प्रमार्जिता ।
अवमानश्च शत्रुश्च युगपन्निहतौ मया ॥ ३ ॥
अद्य मे पौरुष दृष्टमद्य मे सफल श्रम ।
अद्य तीर्णप्रतिज्ञोऽहं प्रभवाम्यद्य चात्मन ॥ ४ ॥
या त्व विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा ।
दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जित ॥ ५ ॥
सम्प्राप्तमवमान यस्तेजसा न प्रमार्जति ।
कस्तस्य पुरुषार्थोऽस्ति पुरुषस्याल्पतेजस ॥ ६ ॥

× × × ×

रक्षता तु मया वृत्तमपवाद च सवत ।
प्रख्यातस्यात्मवशस्य यङ्ग च परिरक्षता ॥ १६ ॥
निर्जितासि मया भद्रे शत्रुहस्तादमर्षिणा ।
प्राप्तचारित्रसदेहा मम प्रतिमुखे स्थिता ॥ १७ ॥
तद्गच्छ ह्यभ्यनुज्ञाता यथेष्ट जनकात्मजे ।
एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया ॥ १८ ॥
क पुमान्हि कुले जात स्त्रिय परगृहोषिताम् ।
तेजस्वी पुनरादद्यात्सुहृल्लेख्यन चेतसा ॥ १९ ॥
रावणाकपरिभ्रष्टा दृष्टा दुष्टेन चक्षुषा ।
कथ त्वा पुनरादद्यात्कुल व्यपदिशन् महत् ॥ २० ॥
न हि त्वा रावणा दृष्ट्वा दिव्यरूपा मनोहराम्
मर्षयेत चिर सीते स्वगृहे परिवर्तिनीम् ॥ २१ ॥
यदर्थ निर्जिता मे त्व यश प्रत्याहृत मया ।
नास्ति मे त्वय्यभिष्वगो यथेष्ट गम्यतामित ॥ २२ ॥

इति प्रव्याहृत भद्रे मयैतत्कृतबुद्धिना ।
लक्ष्मणे भरते वा त्व कुरु बुद्धिं यथासुखम् ॥ २३ ॥
सुग्रीवे वानरेन्द्रे वा राक्षसेन्द्रे विभीषणे ।
निवेशय मन सीते त्व यथासुखमात्मन ॥ २४ ॥

—युद्ध काण्ड, सर्ग ११५

अर्थात् युद्धमे शत्रुओंको हराकर तुम्हे जीता । पुरुषार्थयुक्त कार्य मैने किया । मेरे क्रोधका अन्त हुआ । शत्रु-समूहके साथ ही साथ अपमानको भी नष्ट कर डाला । आज मेरी वीरता प्रकट हुई । परिश्रम सफल हुआ । अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके आज मैं अपनी आत्माका स्वामी हुआ हूँ । मेरी अनुपस्थितिमे राक्षस तुम्हे ले गये । दैवद्वारा सम्प्राप्त दोषको मैने मनुष्य प्रयत्नसे जीत लिया । सप्राप्त अपमानको जो पुरुष अपने तेजसे मिटा नहीं डालता उस अल्प तेजवालेका पुरुषार्थ क्या ? सर्वत्र आनेवाले कलकसे अपने प्रसिद्ध वशकी रक्षा करनेवाले (राम) द्वारा तुम शत्रुओंके हाथसे निकाली गई हो । सन्देहपूर्ण चरित्रवाली तुम मेरे सामने खडी हो । इन दशों दिशाओंमे मेरा तुमसे कोई प्रयोजन नहीं रहा । अच्छे कुलमे उत्पन्न कोई पुरुष भी पर पुरुषके गृहमे निवास कर आई हुई स्त्रीको पुन कैसे स्वीकार कर सकता है ? अपने महान् कुलकी ओर देखते हुए मै तुम्हे कैसे ग्रहण करूँ ? अपनी कीर्तिको पुन प्राप्त करनेके उद्देश्यसे ही मैने तुम्हे जीता है । दिव्यरूपवाली मनोहारिणी तुमको घरमे देखकर रावण कबतक निग्रह कर सका होगा ? तुम्हारे ऊपर मुझे अब जरा भी आसक्ति नहीं है, यह निश्चय पूर्वक कह रहा हूँ । अब तुम यहाँसे जहाँ जीमें आवे चली जाओ । अथवा लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव, विभीषणादिमेसे किसीमे,—जिससे तुम्हे सुख हो,—अपना मन लगाओ ।

सीतासे रामका ऐसा कहना कैसा है ? जैसे एक नीच आदमीका जवाब हो। सूर्यवशके गौरव और शत्रुजित् होनेके गर्वसे उन्मत्त रामके लिए 'रावणाक परिभ्रष्टा' सीता अग्राह्य हुई और उन्होने उससे वहाँसे जानेको कहा । यह तो किसी हद तक सह्य भी है, पर लक्ष्मण विभीषणादिमेसे किसी एकको स्वीकार करनेकी सलाह देना तो अक्षम्य अपराध है,—नीचताकी हद है । ऐसे पुरुषको आदर्श पति मानना स्त्री-समाजके प्रति अन्याय करना है, उनका गला घोटना है तथा पतियोंको सिर चढानेका मार्ग प्रशस्त करना है

यहाँ मैं एक ऐसे पुरुषका आदर्श उपस्थित करता हूँ जो अपनी स्त्रीके प्रति जनताका बुरा विचार देखकर भी धर्मके बताये हुए मार्गपर साहसके साथ चला गया।

अफगानिस्तानके भूतपूर्व बादशाह अमानुल्लाहने देखा कि हमारे यहाँकी स्त्रियाँ पुरुषोंके काम विकारकी पूर्तिके सिवा और किसी काममें नहीं आ रही हैं। उसका मूल कारण पर्दा है। यह स्थिति बदले, मेरे देशकी स्त्रियाँ भी अन्य देशोंकी तरह देशसेविकायें बने, पंडितायें बने, स्वतंत्र होकर देशके कुछ काम आवें, इस लिए पर्दा उठा देना चाहिए और सबसे पहले उसकी बेगम सुरैयाने पर्देको फाड़कर फेंक दिया।

बस, लोगोंने हल्ला मचाना शुरू किया—हुजूर, बेगम साहबाने बुर्का हटाकर दीनकी रूसे बड़ा गुनाह किया है, इसलिए आप उन्हें तलाक दे दें।

यह एक तुच्छ धोबीके मुँहकी क्षीण आवाज नहीं थी, वरन् सारी प्रजाकी स्पष्ट और बुलन्द आवाज थी—इच्छा थी। फिर भी अमानुल्लाहने रामकी तरह सिर्फ स्वार्थ, राज्य, कीर्तिको ही नहीं चाहा। अपनी इज्जत और नामकी परवाह नहीं की। धर्मने जिधर इशारा किया, न्यायने जिस ओर संकेत किया, वह उसी ओर चला। उसने दृढतासे कहा—सुरैया मेरी धर्मपत्नी है, विवाहिता स्त्री है और धर्मपूर्ण जीवनमें आनेवाले सुख दुःखोंको समानरूपसे बाँट लेनेकी शपथ ही विवाह है। मैं उस बंधनमें बँधा हूँ। सुरैया पतिव्रता है, मैं पत्नी व्रती हूँ। देशकल्याणके लिए उसने ठीक ही किया है। मैं उसका समर्थन करता हूँ, करूँगा, उसके पक्षमें खड़ा रहूँगा, इसके लिए राज्य भी छोड़ देना पड़े तो कोई हर्ज नहीं।

राज्यके लिए या प्रजाके सद्भावके लिए उसने सुरैया बेगमके प्रति अन्याय नहीं किया। वह अपनी प्रजाको प्यार भी बहुत करता था। जब लोगोंने विद्रोह कर दिया और मंत्रियोंने तथा मित्रोंने दमनकी सलाह दी, तब भी उसने उनकी राय नहीं मानी और कहा, मैं अपनी प्रजासे युद्ध नहीं करूँगा, इस कार्यके लिए मैं एक आदमीकी भी जान अपने हाथसे नहीं लेना चाहता। यह राज्य मैं उन्हींके हाथों सौंप कर चला जाऊँगा, जिससे वे मेरे सद्भाव प्रेरित कार्योंको समझ सकें।

इसके बाद वह अपनी पत्नी और बच्चोंको लेकर परदेश चला गया।

ऐसे पुरुषोंद्वारा ही स्त्रियोंका गौरव स्थिर रहता है, न कि एक धोबीके मुँहसे निकली हुई बातको प्रजाका मत समझकर पत्नीको घरसे निकाल देनेवालोंके द्वारा।

पतिके घोर अन्याय करनपर भी आँसुओको भीतर हा भीतर पी जानवाला, पतिक दुष्ट कर्मोंका सुधारनेका भी अधिकार नहीं रखनेवाली, पति चाहे जिस गढ़ेमे उतारे, इच्छा न रहनेपर भी बिना चीं-चपड़के उसमे उतरनवाली, पति उसके जीवनका कितना भी नीच, घृणित, दुभर बना द पर ज म ज मान्तरमे भी वैसे ही पतिकी प्राप्तिके लिए प्राथना करनेवाली, भीतर कुढकुढ़कर मरते रहनेपर भी बाहर जरा भी प्रतिकूल भाव न दिखा सकनेवाली,—हिन्दू स्त्री आज इस हीन दशा तक न पहुँचती, यदि उसके सामने ' सीता-सी पतिव्रता ' का—जिसमे उपर्युक्त सब अद्भुत भाव भरे हैं—आदश न रखा जाता।

' राम-राज्य ' और ' सीता-सी पतिव्रता ' का जप करनेवाल तथा उसी आदर्शको सामने रखकर उससे हानेवाल नित्य प्रतिके अत्याचारो और रोमाचकारी घटनाओको न समझ सकनेवाल समाजक। सदा दखत रहनेके कारण ही मै ऐसा लिख सका हूँ।

अब तीसरे आक्षपपर विचार करूँगा।

पर पुरुषसे स्नेह पूवक यवहार करना पतिव्रताका दाष क्यो माना जाय? नीति, धर्म और सदाचारका अर्थ तो सबके वास्त एक सा ही हाना चाहिए। व्यक्तिके अनुसार तो उसमे भिन्नता या परिवर्तन न होना चाहिए। लेकिन समाजन व्यक्तियोका अपने निधारित नियमपर चलानेक लिए धम और सदाचार का निणय भी भिन्न भिन्न तरहसे किया है। पुरुषोक वास्त अलग नीति है और स्त्रियोक वास्ते अलग। बहुत सी बाते जा पुरुषोके लिए दोष नही हैं स्त्रियोके लिए कलकका कारण हो जाती हैं। इस बातमे हमे वाल्मीकीय रामायण कितनी सहायता करती है, यह दखिए। युद्धक बाद विस्मय, आनन्द तथा स्नेह मिश्रित मुख मुद्रा लिय प्रथम दर्शनक लिए सीता आता है रामके पास। उस समय राम क्रुद्ध होकर विषका तीर छोडत हैं—" जाआ यहाँस जहाँ जीमे आव। रावणका गोदसे भ्रष्ट हुइ तुमको कौन पुरुष स्वीकार करगा ? "

उस समय अश्रुपूरिता और लज्जास अपने अगोमें समाई जाती हुइ सीता जवाब देती है—

" प्रविशन्तीव गात्राणि स्वान्येव जनकात्मजा।
वाक्शल्यैस्तै सशल्येव भृशमश्रूण्यवर्तयत्॥ ३

किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् ।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ ५
न तथास्मि महाबाहो यथात्वमवगच्छसि ।
प्रत्ययं गच्छ मे येन चारित्रेणैव ते शपे ॥ ६ ॥
पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशंकसे ।
परित्यजेमां शंकां तु यदि तेऽहं परीक्षिता ॥ ७
यद्यहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो ।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥ ८ ॥
मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्त्तते ।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ॥ ९ ॥
सह संवृद्धभावाच्च संसर्गेण च मानद ।
यद्यहं ते न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥ १० ॥
प्रेषितस्ते यदा वीरो हनूमानवलोककः ।
लंकास्थाऽहं त्वया वीर किं तदा न विसर्जिता ॥ ११ ॥
प्रत्यक्षं वानरेन्द्रस्य तद्वाक्यसमनन्तरम् ।
त्वया संत्यक्तया वीर त्यक्तं स्याज्जीवितं मया ॥ १२ ॥
न वृथा ते श्रमोऽयं स्यात्संशयं यस्य जीवितम् ।
सुहृज्जनपरिक्लेशो न चायं निष्फलस्तव ॥ १३ ॥
त्वया तु नर-शार्दूल क्रोधमेवानुवर्त्तता ।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥ १४ ॥
अपदेशेन जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात् ।
मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु तेन पुरस्कृतम् ॥ १५ ॥
अप्रीतस्य गुणैर्भर्तुस्त्यक्ताया जनसंसदि ।
या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥

—युद्धकाण्ड, सर्ग ११६ ।

अर्थात् इस तरह मामूली आदमी जैसी बातें कर रहे हो। लेकिन जैसा तुम समझ रहे हो, वैसी मैं नहीं हूँ। मेरे चरित्रको समझकर इसपर विश्वास करो। मैं शपथ करती हूँ। रावणके शरीर-स्पर्शका अपराध तो मेरा नहीं है,—इसमे लेशमात्र भी मेरी इच्छा न थी। इसका अपराधी कोइ है तो दैव ही। हृदय जो मेरे अधीन था वह तो तुम्हारेमे ही लग्न था,—पर शरीर पराधीन हो गया, उसका मैं क्या करती? इतने दिन साथ रहनेपर भी यदि तुम मेरा शील न समझ सके, तो मै कबकी नष्ट हो चुकी। जब तुमने हनुमानको मुझे देखने लंका भेजा था तभी क्यो न छोड़ दिया? यदि उसी समय परित्यागकी खबर दे देते, तो मै अपना अंत सोच लेती। फिर इसके लिए इतने प्राणियोंकी हत्या क्यों की गई? इतने मित्रोंका कष्ट क्यो दिया गया? क्रोधका अनुसरण कर तुम नीच मनुष्योंकी तरह स्त्रीत्वको पुरस्कृत कर रहे हो, नीच मनुष्योंकी तरह स्त्री नामसे ही संदेह करने लगे। स्त्री कहकर स्त्री जातिपर ही तुम शंकाकी दृष्टि डाल रहे हो। मेरा चरित्र, मेरा वंश,—इन सब बातोंका तुम कुछ भी ख्याल नहीं करते। अब परित्यक्ता मैं, इस जनसमूहके सामने अग्निदेवको समर्पित हो जाऊँ,—यही उचित है।

इतना कहना था कि रामको मौका मिला। उन्होंने लक्ष्मणको इशारा किया। लक्ष्मणने अग्नि प्रज्वलित की। सीता अग्निमें प्रवेश कर फिर निर्मल कांतिके साथ बाहर आई।

इस तरह अपनी पवित्रता सिद्ध कर दिखानेपर भी अयोध्या पहुँचनेपर आदर्श भर्ता रामने उसके साथ जैसा व्यवहार किया सो हम पहले ही देख चुके हैं। धोबीके मुँहसे वह अपवाद निकलते ही तुरत रामने अग्नि प्रवेशके लिए फिर 'वन्स मोर' (Once more) कहा। लेकिन आत्माभिमानिनी सीताने स्वीकार नहीं किया।

तब लक्ष्मणसे चुपचाप सलाह हुई। वन विहारके बहाने सीताको ले जाकर लक्ष्मणने जंगलमें छोड़ दिया। यह अत्याचार क्यों किया गया? इसलिए कि सीता स्त्री थी। स्त्रीके चरित्रमें कहीं भी शंकाकी जगह हो तो तुरत ही उसे 'सुप्रीम-कोर्ट' रूपी पतिके पास उसका निर्णय कराना होगा। इतना ही नहीं, फिर चीफ जस्टिसके फैसलेके अनुसार उसे जनताके आगे अपनी पवित्रता साबित करनी होगी। नहीं तो, वह पतिदेवताद्वारा स्वीकृत नहीं हो सकती। अब वह बेचारी किसी तरह जनताका सद्भाव प्राप्त करे, अन्यथा कोइ उपाय नहीं। भला जनताको पति पत्नीके बीचमें पड़नेकी क्या जरूरत है? इसीलिए, कि समाजमें स्त्री व्यक्तिके स्थानपर विराजमान नहीं है। इसीलिए उसकी ख्याति या अपख्याति उसकी नहीं, उसकी इज्जत

उसकी अपनी नहीं। उसका गौरव इतना ही है कि वह अमुक व्यक्तिकी पत्नी है। इसीलिए, अमुक व्यक्तिकी पत्नी ऐसी वैसी है, यह कलंक उसके पतिको न लगे, इतनी सावधानीसे स्त्रीको रहना चाहिए। यहाँतक कि एक धोबी भी कोई बात उसके प्रति न कह सके। रामायणके आदर्शने यहाँतक हमारी दुर्दशा कर दी है!

पक्षपात रहित दृष्टिसे विचार करनेपर यही स्पष्ट होगा कि सदाचार और नीतिका बंधन सबपर समानरूपसे ही लागू होना चाहिए। अच्छा, यदि यही मान लिया जाय कि पुरुषमात्रपर एक ही नियम लागू है, तो मैं एक प्रश्न करूँगा। रामसे शूपनखाने प्रेम किया था। रामको पानेके लिए उसने अनेक प्रयत्न भी किये थे। फिर, सीता हरणके बाद रामने भी विरहावस्थामें जीवन बिताया। उसी समय व्यर्थ ही भाइयोंके झगड़ेमें फँसकर और बालिका अन्याय पूर्वक मारकर उसकी पत्नी तारा उन्होंने सुग्रीवके हाथ सौंप दी। बिना किसी ननु-नचके हस्तान्तरित होनेवाली ताराके मुआमलेमें भी रामने बेकार ही हाथ डाला। फिर, इन दोनों घटनाओंमें राम पवित्र हो रहे,—इसके प्रमाणके लिए तो उन्होंने एक बार भी अग्नि परीक्षा नहीं दी। ऐसा क्यों? इस प्रश्नका उत्तर आप न्यायकी हदसे बाहर होकर देंगे। आप कहेंगे,—राम तो पुरुष थे। पुरुषकी पवित्रता कैसे नष्ट होगी?

इस तरह पुरुषोंके वास्ते अलग और स्त्रियोंके वास्ते अलग आचार और धर्मका निर्णय करनेवाले इन ग्रन्थोंके कारण ही हिन्दू स्त्रियाँ इस हालत तक पहुँची हैं। इन ग्रन्थोंने स्त्रियोंका नाश करनेके लिए कल्पनायें भी कैसी कैसी की हैं!—"स्त्री हृदय और आत्मासे रहित है। उसका सब कुछ पति ही है।" इसलिए स्त्री 'भार्या' अर्थात् पतिके द्वारा भरित या पोषित होनेवाली, और पुरुष मूँछोंपर ताव देता हुआ 'भर्त्ता' अर्थात् भरण पोषण करनेवाला, हुआ,—चाहे वह भार्याद्वारा उपार्जित धनसे ही पेट क्यों न पालता हो। सिर्फ शब्दसे ही सही,—वह भरण पोषण करनेवाला तो होता ही है। इसलिए, स्त्रीके धर्म, नीति, व्यवहार आदिका निर्णयकर्त्ता वही है जिससे वह अपनी कीर्ति और सुख प्राप्त कर सके। स्त्रीके हृदय और आत्मा नहीं है, इसलिए वह किसी तरहकी भी विशेषतासे या व्यक्तित्वसे रहित 'वस्तु' (a thing) हो गई है 'भार्या'। फिर 'वस्तु' अपनी नीति और सदाचारका निर्णय आप नहीं करती, अतः उस 'वस्तु'का उपयोग करनेवाला उस 'वस्तु'की नीति और धर्मका निर्णय करता है। स्त्री नित्य उपयोगमें आनेवाली निर्जीव वस्तुके समान,—छाता-छड़ी घड़ीके

समान,—हो गई है, इसलिए अपने बारेमे वह आप निर्णय नहीं कर सकती । फिर उसे स्वतत्रता कैसी ? तब तो पर पुरुषके साथ स्नेहका बताव सदाचारके बाहर हागा ही स्त्रीके लिए ।

स्त्रीको भी अपने धर्मका निर्णयाधिकार है । उसके भी आत्मा है, हृदय है । यदि यह बात स्वीकार की जाती तो बड़ी झझट खड़ा होती । आत्माका होना स्वीकार करनेसे व्यक्तित्वका होना भी मानना पडता । फिर व्यक्तित्व माननेपर कर्मका अधिकार भी कुबूल करना पड़ता । फिर कर्मका अधिकार हानेपर अपने कार्योंके लिए वह खुद ही उत्तरदात्रा होती और अपना उत्तरदायित्व अपने ऊपर रहना ही स्वतत्रता है । यह सब झझट देखकर ही हिन्दू धर्म वेत्ताओंने एक छोटेसे ही सूत्रसे कि, 'स्त्राके आत्मा नही है' (पति ही उसकी आत्मा परमात्मा है) स्त्रीका सर्वस्व अपहरणकर उसे बन्धनमे डाल दिया ।

मेरे इस नाटककी सीता पगपगपर अपन धर्मका आप ही निर्णय कर शीलकी रक्षा करनेवाली और स्वतत्र यक्तित्ववाली स्त्री है । इसलिए, पर पुरुषसे वह स्नेह पूर्ण बर्ताव कर सकी है । रामद्वारा किये गय अत्याचार और लगाये गये कलकको,—जिसमे सिर्फ रामका यशोलिप्सा ही झलक रहा है,—न सहन कर सकनेके कारण तथा पतिद्वारा (रामद्वारा) स्वार्थ भावस किये गय सब अपमानो, अत्याचारोंको सहना और उसकी सब भली बुरी इच्छाओंक आग गुलामकी तरह सिर झुकाना ही पतिव्रतका आदर्श न माननेक कारण ही इस नाटककी सीता अपने पवित्र स्थानसे च्युत नहीं हा सकती ।

वाल्मीकिकी सीता अत्याचार करनेपर भी रामके साथ बड़ी मनुष्यताके साथ पेश आइ जिससे राम भी लज्जित हो—यह बात पहल किये गये विचारो तथा सीता निवासनकी घटनाका विवेचन करनेसे समझमे आ सकती है । साता निर्वासनका मैं अन्तमे—'असली कथा'मे,—विवेचन करूँगा ।

अन्तमे इस बातपर भी विचार करना है कि रावणका सिर अपनी जॉघपर रखनेसे सीताका पातिव्रत्य नष्ट हो गया या नहीं । रावण सीतासे प्रेम कर नाना कष्ट उठाकर उसके लिए अपनेको नाश करनेको भी तैयार हुआ था । उसी हालतमे वह सीताके पैरोंके पास मूर्छित हुआ था । वैसी स्थितिमें सीताका वैसा व्यवहार करना मुझे दोष पूर्ण नहीं मालूम पड़ता । वरन् यदि सीता वैसा न करती, तो वह उसकी त्रुटि समझी जाती ।

सामाजिक नियमोंके मानसिक गुलाम हो जानेवाले अभागे मनुष्य भी किसीको विपत्तिमे देखकर सहारा देनको सभवत उत्सुक हो जाते हैं ।

मान लीजिए एक अछूत या चाडाल पानीमे डूब रहा है या किसी खतरेमें पड़ा है । उसकी हालत देखकर किसी कट्टर सनातनी ब्राह्मणका हृदय भी पहले उसकी सहायताको अवश्य झुकेगा । हाँ, बादमें उत्तम मानवताको भस्मसात् कर नीच स्वार्थको सहारा देनेवाली ब्राह्मणत्वकी कल्पना उसे पीछे खींच ले सकती है । वह सहारा देनसे मुकरनेवाला व्यक्ति स्वार्थी ब्राह्मण भले ही हो, उत्तम मानव नहीं हो सकता । सहज मनुष्यताका खून कर डालनेवाली यह भावना गर्हित ही होगी । किसीको दु खमे देखकर जब मानवताश्रय हृदय हो एकाएक सहायताको आतुर हो जाता है, तब वह हृदय,—जिसने निर्मल मानवताको मल विहीन अ इनेकी तरह स्वच्छ रखा है,—बिना विचार सहायताके वास्ते दौड़े तो कुछ आश्चर्य नहीं है, बल्कि स्वाभाविक है । फिर स्त्री हृदय तो ऐसे कार्योंमे सबसे आगे दौड़ता है । इन बातोंको स्वीकार करनेवाला सीताके उस कार्यकी प्रशसा ही करेगा,—सदहात्मक प्रश्न नहीं ।

इस बातको स्वीकार कर लनेपर भी पर पुरुषके स्पर्शका प्रश्न रह ही जाता है । उसपर भी मै कुछ विचार करूँगा । प्राच्य जातियोंके (वर्तमान जापानके सिवा) पतनका एक कारण यह स्पर्शभय भी है । इसके कारण प्राच्य समाजोमे जो परिवर्तन हुए हैं उनपर दृष्टि पात कीजिए । वय प्राप्त पुत्रका माता, युवती बहिनको भाइ, स्पर्श करनेका,—आलिंगन करनेका,—साहस नहीं करता । मतलब, इस सीमातीत स्पर्श भयन सहज मातृत्व और सहज भ्रातृत्वको भी दु खह रूप दे दिया है । यह कितना लज्जास्पद विषय है ? जब हम प्रेमी प्रेमिकाओंके स्पर्शके सिवा अन्य किसी स्पर्शसे स्पदित न होंगे,—हमारा हृदय कटकित न होगा,—तब हमारा नैतिक जीवन कितना उन्नत होगा ?

हमारे मनमें शका उठती है कि यह सिद्धान्त मान्य होनेपर भी क्या सभव होगा ? लेकिन सभव क्यो न होगा ? जिस वस्तुको हम दुर्लभ या अलभ्य बना देते हैं उसीके लिए लालायित अथवा मोहित होना मानव-स्वभाव है । एक दो उदाहरण देता हूँ—

१ गोरी जातियोंमें यह एक विचित्र प्रथा थी कि पैरका कोई भाग दिखाइ न पड़े । इसलिए स्त्री पुरुष पूरे मोजे पहनते थे । निरन्तरके अभ्यासके कारण यह शिष्टाचारमे परिणत हो गया । अन्तमे उनकी हालत यहाँतक पहुँची कि मोजेके बिना खुली हुइ एड़ी दिखाइ पड़नेसे ही उन्हें कामोद्रेक होने लगा । अब बुद्धिमान लोग सोचे कि एड़ियोंसे कामाद्रेकका क्या सम्बन्ध है ? क्या यह समाजके कठोर नियमोद्वारा मानव प्रकृतिको बेहद नीच बनाना नहीं है ?

२ मलयालम (ट्रावनकोर) प्रदशमे स्त्रियोका चोला पहनना आवश्यक नहीं है। प्राय उनके वक्ष स्थल खुले ही रहते हैं। परन्तु यह दृश्य वहाँके पुरुषोंमें विकार नहीं पैदा करता।

३ स्पर्श भी दृष्टि तुल्य है। पाश्चात्य लोग स्पर्शको विशेषता नहीं देते। वहाँ स्त्रियाँ किसी भी पुरुषके साथ बिना किसी विकारको प्राप्त हुए बैठतीं, सफर करतीं या स्पर्श करती हैं। उस साहसको देखकर यहाँकी स्त्रियोको स्तभित ही रह जाना पडता है।

पर पुरुषके स्पशसे ही धम और सदाचार भ्रष्टताकी दुहाइ दकर स्त्रियोंकी स्थिति सामाजिक दृष्टिसे हमने बहुत गिरा दी है। स्त्री पुरुषक बीचमे पचेन्द्रियाँ सिफ उद्रकका ही कारण हो सकती हैं, इस कल्पनास, तथा स्पशका ऐसा भया वह अर्थ करनसे हा, स्त्रियोकी स्वतत्रताका लाप हुआ,—व बन्धनमे पडी।

स्पर्श मानसिक विकार सन्निहित है। प्रत्येक स्पश यदि मानसिक विकार उत्पन्न कर तो उस व्यक्तिका सदाचार जरूर कल्मष पूण कहा जायगा। मानसिक विकार उत्पन्न होनेपर स्पशमे सुखकी प्राप्ति उत्तम है, परन्तु स्पश मात्रसे मानसिक विकार होना घृणित है। मानसिक विकार उत्पन्न हानके बाद ही यदि हम स्पशको स्थान द तो नैतिक दृष्टिस उन्नत होग।

स्त्री कहनसे सिर्फ शरीरका ही बाध नही हाता है, वरन् उसके हृदय और आत्माका भा। स्पशका सम्ब ध शरीरस है, परन्तु, कामका सम्बन्ध हृदयसे है और आध्यात्मिक जिज्ञासाका सम्बन्ध आत्मासे। जिस जातिन स्पर्शका सम्बन्ध कामसे और कामका आध्यात्मिकतास जाड दिया हो,—अथात् कामको स्पर्शके वश और आत्माका कामक वश कर दिया हो, उसकी गणना अधमोमे करनेके सिवा और कोई उपाय नही है।

जिस स्पशमें रोगक कीटाणु न हो, उसस शरीरकी पवित्रता नष्ट नहीं हा सकती। जिस स्पर्शसे मानसिक विकार उत्पन्न न हा उससे परहेज रखनेकी आवश्यकता नहीं। उस स्थितिमे मानसिक पवित्रता किसी तरह भी नहीं बिगड सकती। स्त्री यदि शरीरमात्र ही न हा तथा हरएक स्पशसे मनोविकार प्राप्त होने वाली दशामे भी न हो, ता स्पर्शम किसी भी तरह उसकी पवित्रता और उसका पातिव्रत्य भग नहीं हो सकता। यह यदि सभव हो जाय तो स्त्रीका पर पुरुषसे भयभीत होकर रहनेकी आवश्यकता न रह जाय। इन कारणोको समझकर यदि इस नाटककी सीताकी आलोचना की जाय तो उसका कार्य उत्तम ही प्रतीत होगा।

इस नाटकके बारेमें और दो-चार बातें कहनी हैं। स्वयवरसे पहले राम और रावणका सीतासे मिलना, पचवटीमे रावणका आकर सीतारामको लका चलनेका निमत्रण देना तथा शबरीकी कथाको कुछ पहलेहीका बताना, आदि बातें वाल्मीकि रामायणमे नहीं हैं। यदि इन नई कल्पनाओंने कलामें कुछ भी चमक ला दी हो, कुछ भी श्री वृद्धि की हो, तो उसीसे उनका समर्थन हो जाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि मैंन रावणके चरित्रको सहानुभूति-पूण कलमसे चित्रित किया है जो रामायणके विरुद्ध है। इसका कारण मैंन पहले ही बतला दिया है। रामायणकी नीतिका अनुसरण कर रावणके चरित्रको ऊपर उठानके लिए सीता या रामके चरित्रमे किसी तरहकी त्रुटिकी कल्पनास सहायता नहीं ली गई है। बल्कि रामायणसे भी अधिक उत्तम, ज्यादा गभीर, ज्यादा उदार तथा उत्तम मानवता, सत्य, तेज और पवित्रात्मावाले सीता-रामका निमाण करनेकी कोशिश की है।

जीसस (ईसा) के बारेमे गाँधीजीने एक बार अपना मत यो दिया था— ''जीससमें बहुत ही महान् आदश दिखलाइ पड़त हैं। उनको मानवजातिका लक्ष्य बनाना उत्तम है। जीसस नामक व्यक्ति कभी था या नहीं, उसके बारेमें लिखी गई बाते सत्य हैं अथवा नहीं, इसस हमारा काई मतलब नहीं। यदि कल किसी पुरातत्त्वान्वेषणके बाद बाइबिलका जीसस काल्पनिक ही साबित हो, तो भी मैं जीससको इतना ही महत्त्व दूँगा।'' ईसाइयोके जीससकी तरह ही हिदुओके राम हैं। राम केवल इतिहास पढ़नेवालेसे ही सम्बन्ध नहीं रखते। बल्कि उन्होंने हिन्दू जीवनको तमाम छा लिया है। अर्थात् हिन्दू-समाज अनेक बातोंमें इस इतिहासका ही अपना लक्ष्य मानता आया है। इसलिए, रामायण-कालसे लेकर आज तक मनुष्य जातिका मानसिक विकास जहाँ तक हुआ है, उस परिमाणकी दृष्टिसे मैंने इस पुस्तकमें यह निधारित करनेकी चष्टा की है कि सीता, राम और रावणकी-सी परिस्थितिमें पड़ जानेपर अथवा राम रावणकी तरह दो भिन्न उद्देश्य वालोंमे सघर्ष उपस्थित होनेपर कैसा यवहार न्याय सगत और उत्तम होगा। गाँधीजीके कथनानुसार आदश प्राय उत्तम जीवन सिफ इतिहासकी वस्तु नहीं हो सकता। अत उसमे नूतन अथकी कल्पना करना उस चरित्रको नित्य नूतन बनाना ही है।

मानव हृदयमें दया आदि महत्तर गुणोंकी वृद्धि करना तथा शत्रुके प्रति भी सहानुभूति उत्पन्न होनेवाले भावोंकी सृष्टि करना मानवताको सच्चा मार्ग दिखाना है।

असली कथा

वाल्मीकीय रामायणके कुछ भागोंपर विचार करनेके बाद असली कथा ऐसी मालूम होती है—

दशरथ स्त्री लोलुप थे। उनकी ३६५ स्त्रियाँ थीं। कैकेयी इस देशकी स्त्री नहीं थी। वह बाल्हीक देशके गिरिवज्रपुरके राजाकी बेटी थी। आज कल यह स्थान अफगानिस्तानमें है। 'कैकेयी' 'कैकोस्त्रा' 'कैकोबाद' आदि नामोंमे भी बहुत साम्य दिखाई पड़ता है। कैकेयी दूसरे देशकी स्त्री थी इसलिए दशरथका उसपर अधिक प्रेम था। रामके अभिषेकके समय कैकेयीने किसी तरहकी बाधा नहीं उपस्थित की। लेकिन मथराने उसमें हाथ डाला। वह कैकयीके साथ नैहरसे आई हुई लौंडी थी। उसने इस तरह उपदेश दिया होगा—इस देशमें हम पराई ही रहेंगी, अपनी नहीं हो सकतीं। अभी तुम दशरथकी प्यारी हो पर रामके राजा होनेपर कौशल्या ही अधिकारिणी होगी। वह तुम्हें और तुम्हारी सतानको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखे बिना न रहेगी। इसलिए, किसी तरह रामका अभिषेक रोककर भरतको राज्य दिल्वानेकी कोशिश करो। यदि ऐसा न करोगी, तो—

हृष्टा खलु भविष्यन्ति, रामस्य परमा स्त्रिय ।
अप्रहृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये ॥

अर्थात् रामकी प्रिय स्त्रियाँ आनन्द प्राप्त करेंगी और भरतकी पत्नियाँ,—तुम्हारी पुत्र वधुये,—आनन्दरहित हो जीवन वितावेंगी।

मथराके तकने कैकेयीके मनमें परिवर्तन ला दिया। बस, कैकयीकी जिद होकर ही रही। राम दशरथके चाहे जितने भी प्यारे रहे हो, पर दशरथ स्त्रीके आगे झुक गये। इसलिए, राम राज्य भ्रष्ट हुए। यह समाचार सुनकर भरत

अपने नानाके घर गिरिवज्रपुरसे अयोध्या आये, परन्तु, माताकी रायसे सहमत न हुए। भरतकी प्रार्थना रामने भी नहीं मानी। इसलिए, वनवास प्रारंभ हुआ। रामन अनार्योंको हराते हुए दिग्विजय प्रारंभ किया। रावणकी प्रशंसा सुनकर रामको उसे भी जीतनेकी इच्छा हुइ। अन्यथा चित्रकूट या किसी समापस्थ अरण्यमे अपनी अवधि न बिताकर वे दक्षिणकी ओर क्यो बढते? तथा मुनियोंकी अर्जीपर राक्षस जातिके संहारको क्यो तैयार होते?

रावण लकाका राजधानी बनाकर सारे दक्षिणापथपर राज्य करता था। वह महाबली था। उसकी दो बाँहे बीस बाँहोंक बराबर थीं। एक सिर दस सिरके समान था। यही नहीं, उसकी जातिके लोग अनेक विद्याओंमे पारगत होकर वायुयान आदि यन्त्रोंका आविष्कार कर बड़े बलवान् तथा उन्नत हो रह थ।

अपनी जातिवालोंका रामद्वारा सत्यानाश होना सुनकर भी रावण कुछ न बोला। किन्तु, सीताका सौन्दर्य देख वह चकित रह गया। उसने सीता हरण किया। बहुत शिष्टतापूर्वक सीताके साथ पेश आते हुए उसने प्राथना की कि शरीर-सुख ही मैं नहीं चाहता, उससे ही मरी तृप्ति न होगी। तुम मेरी पत्नी बनो। सीतान एक वषकी अवधि माँगी। उसने स्वीकार किया।

इसी बीच रामने बालिका अधर्मसे मारा और तारा तथा उसका राज्य उसके छोटे भाइ सुग्रीवके अधीन किया। फिर वे वानर-सेना तैयार कर लकामे घुसे। युद्ध आसन्न हानपर रावणने अपन मित्रो बधुओंसे राय पूछी। इस समय सीताको रामके पास भज देना, भयभीत होकर सिर झुकाना हागा—यह नहीं हो सकता, आदि बाते कहकर कुभकर्णने जोश दिलाया।

विभीषण रावणका छोटा भाइ था। बड़ा चलाक और जालसाज था। डूब कर पानी पीता था। धर्मका माग बतलाते हुए उसने रावणको धमकी दी कि क्षमा-याचनाके साथ सीताको न लौटा दोगे, तो राम तुम्हारा सत्यानाश कर डालेगा। रावणन क्रोधित होकर कहा, "कायर, तू इस तरह शत्रु पक्षकी बातें क्यो कर रहा है?" विभीषणन जवाब दिया, "नहीं नहा, सो बात नहीं है। रामके बाण जब तुम्हारे शरीरमे लगकर कष्ट पहुँचायेंगे, तब वह मै नहीं देख सकूँगा। इसलिए, तुम्हारा कुशल सोचकर ही ऐसा कह रहा हूँ। यदि मेरी बात तुम्हें न रुचती हो तो लो, मैं ही कहीं चला जाता हूँ। कही भी रहूँगा, तुम्हारी विजय-कामना लेकर ही रहूँगा। विरुद्ध आवाज उठानेवालेके न रहनेपर तुम सुखी

हाना।" मानो विभीषणको भाईपर बड़ा प्रेम था। खैर, कहीं जानेका बहाना करके लंका छोड़कर वह द्रोही पहुँचा रामके पास। रामसे आश्रय माँगते हुए उसने कहा, "रावणको जीतनेका उपाय तथा लंकापुरीका सारा रहस्य मैं आपको बतलाऊँगा। आप कृपाकर मुझे अपनी शरणमे रख ले।" सुग्रीवादिकोंके मना करनेपर भी कि यह भी एक राक्षसोकी नाति है, यह हमारा रहस्य लेने आया है, इसे अपने पास न रक्खे,—रामने दूर दृष्टिसे विभीषणको अपने साथ रख लिया। इतना ही नहीं वरन् उसका सब तरहसे अपना गुलाम बना लेने तथा वहाँका सब रहस्य जान लेनेके लिए रामने विभीषणसे अनीतिकर प्रतिज्ञा की कि रावणका सर्वनाश कर तुम्हे लंकाका राजा बनाऊँगा। बस, विभीषण भ्रातृ द्रोहके लिए तैयार हो गया। उसने रामको रावणके मरनेके सब उपाय बता दिये। इन कृतघ्नोसे रामने रावणका वध कर विजय पाई।

सीतापर रामको सन्देह उत्पन्न हुआ। सीताकी भर पेट निन्दा कर उसे चले जानेको कहा। पर, आत्माभिमानिनी सीताने रामकी घुड़कियोंकी परवाह न करके उचित रीतिसे तर्कपूर्ण उत्तर देकर अपनी पवित्रता प्रकट की। रामसे स्वीकार करते ही बना। दिग्विजय कर आनेपर सीजरका स्वागत जिस तरह रोमवालोंने किया था उसी तरह अयोध्यावासियोंने रामका स्वागत किया। भरतने धरोहर, राजगद्दी, सौंप दी। सबके दिन सुखमे बीतने लगे।

लेकिन यहीं अन्त नहीं हुआ। रामकी कीर्ति कथा, सीताकी विपत्तियाँ, उसका गर्भवती होना, आदि बाते लोगोंको मालूम हुई। फिर जनतामे बुरी अफवाहे उड़ने लगीं। विवाहके समय सीताकी उम्र क्या थी, इस विषयमे भिन्न भिन्न मत हैं। कोई आठ, कोई बारह और कोई अठारह वर्ष बतलाता है। अच्छा हम यही मान ले कि वे विवाहके समय आठ वर्षकी थीं। विवाहके बाद नौ वर्ष अयोध्या वास किया, फिर तेरह वर्ष वनमे बीते। इसके बाद लंकामे एक वर्ष। इतने दिनोंके बादका (लंका प्रवासके बादकी) गर्भोत्पत्ति ही इस अपवादका मूलाधार थी। सीता जानती थी कि सब कुछ विधिके माथे मढ़कर मेरे ऊपर किसी तरहका अत्याचार करनेसे न हिचकनेवाले राम इस परिस्थितिमे मेरे साथ कैसा व्यवहार करेंगे। इस लिए उसने थोड़े दिन मुनियोंके आश्रममें रहनेकी इच्छा प्रकट की। रामने यह स्वीकार नहीं किया और प्रजाके सामने पुनः अग्नि प्रवेश कर अपनी पवित्रताकी परीक्षा देनेको कहा।

जब सन्देहकी जगह थी तब सीताने खुद ही (लकामें) अग्नि प्रवेश चाहा था। पर, आज उसे पतिका यह व्यवहार अमानुषिक और नीच जान पड़ा। इसलिए, उसने अग्नि-परीक्षा स्वीकार नहीं की। तब रामने उसे कुछ न कहकर चुपचाप लक्ष्मणद्वारा जगल भिजवा दिया।

अकेली जगलोंमें रोती सीताको वाल्मीकिने देखा और वे आदरसे लिवा ले गय। वाल्मीकि जनकके मित्र थे। उन्होने सीताके मुँहसे आद्योपान्त कथा सुनी। सीताके लिए याय प्राप्त करनेके उद्देश्यस उन्होंने रामका गुणगान करते हुए तथा सीताकी विपत्तियोंका वर्णन करते हुए रामायण लिखी। फिर लव कुशको वह कथा सिखाकर रामका दर्शन प्राप्त किया। उन कुमारोंके साथ खुद भी रामायणका अभिनय करके प्रजामें सीताके प्रति गौरव उत्पन्न किया।

वाल्मीकिकी रामायण-रचनाका प्रबल कारण इसीको माननेका एक तर्क और है। वाल्मीकि महाकवि थ। उनकी काय-कला भी अद्भुत थी। अपने आदर्शके अनुकूल दोष रहित पत्नी, भाइ, सेवक, मित्र आदिका सफलचित्रण सीता, लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण आदिके रूपमे करनेवाले वाल्मीकिने रामके चरित्रमे इन सब त्रुटियोको, जिनका मै पहले विवेचन कर आया हूँ, त्रुटियोंके रूपमे ही क्यो रहने दिया? इस प्रश्नका एक ही जवाब सूझता है। वह यह कि वाल्मीकि चाहते थे कि रामने सीताके प्रति जो अन्याय अत्याचार किया है, उस व समझे और सीताको पुन ग्रहण करें। यही उनकी रचनाका प्रधानोद्देश्य है। यदि वे रामके चरित्रमे भी उन त्रुटियोंको न दिखाते तो उनका मनोरथ सिद्ध न होता। वाल्मीकिके कथनानुसार ही रामने अपने कियेपर पछता कर सीताका आह्वान किया। परन्तु, सीता अपने स्वार्थी पति और नाकमे लग दुर्गन्ध रूपी कलकको कुत्तेकी तरह चाटनेवाली जनतास ऊब चुकी थी। वह अभिमानिनी थी। अपने बच्चोंका भविष्य किसी तरह अनुकूल बनाने तथा रामको किसी तरह उसक किये अन्यायोको सुझानेके लिए ही सीता जीवन धारण कर रही थी। इसलिए, राज-सभामे आनेके लिए कहते ही रामके सामने ही उसने प्राण त्याग दिया।

सीताको पुन स्वीकार करनेके उद्देश्यसे लिखनेपर भी वर्णनमें अद्भुत कवित्व शक्ति दिखलाने तथा आर्य पक्षके समर्थनमे धर्म सिद्धान्तोंको गूँथनेके कारण रामायणको बहुत गौरव प्राप्त हुआ।

वाल्मीकि निर्मित ' सीता-राम'का बहुत लोग नही पहचानत। (खासकर हिन्दी जनता तो तुलसीके 'राम'का हा पहचानती है—अनुवादक) आयत्वक प्रचारके कारण इस कथाका समाजमे बहुत आदर हा चला था इसलिए, बौद्धोंन भी इसी कथाक आधारपर ' दशरथ जातक ' नामक ग्रन्थ अपने मनके अनुकूल रचा। उस कथामे सीता रामकी बहिन बताइ गइ है। वाल्मीकिने रामका मनुष्य रूपमे ही चित्रित किया था पर इ० स० पूव ८०० वषक बाद उसमे किसी सज्जनन अनेक अद्भुत बाते घुसेड़ दीं। फिर रामका भी कृष्णक साथ अवतारोमे स्थान देनेके वास्त महाभारतमे भी ' रामापाख्यान ' पाछे जोड दिया गया। उसके बाद रामायण अनेक रूप धारण करती हुइ वाल्माकि रचित आठ हजारस बढकर पचीस हजार श्लोकोकी हा गई। उसके बाद वैष्णवोने बौद्धाका अनुकरणकर रामायणपर III का टम्माक (ऊर्द्ध पुण्ड) लगाकर अपन लिए पटट करा लिया। तलुगम रामचरित लिखनवालोमेस किसान भी वाल्मीकिका ठीकस अनुसरण नहीं किया है।

रामायणकी कथा

(१) आदिकाव्य (वाल्मीकिकृत, ८००० अनुष्टुप् छन्द, सा० वी० वैद्य सम्पादित)

(२) दशरथ जातक (बौद्धोका)

(३) रामापाख्यान (महाभारतमे)

(४) पुराणोकी रामकथा (पद्मपुराणादिमे)

(५) अध्यात्म रामायण

(६) कालिदासके समय तथा उसके बाद तकके करीब २५०० ग्रन्थोमे

रामायणके आलोचक।

वैद्य, वीबर, म्यूर, वीलर, हपकिन्स।

अनारकली

पहला दृश्य

[प्रात काल । राजकुमार सलीमका कक्ष । दीवारकी तरफ मुँह कर सोफे पर सोया सलीम उच्छ्वासके साथ करवट बदलता है । फिर अश्रुपूरित लोचनों से पासवाले छोटे मेजकी ओर देखता है । एकाएक हकबकाकर उठता है । मेजके पास जाकर घबराये हुए स्वरसे—]

सलीम—दरबान !

दरबान—(प्रवेशकर) खुदावद !

स०—इस कमरेमें कौन आया था ?

द०—नहीं जानता गरीबपरवर !

स०—(पास आकर) क्यो नही जानता ?

द०—हुजूर !

स०—क्या हुजूर ? (नौकर हाथ मलता हुआ पीछे हटने लगता है । घबराहटके कारण पैर-पर पैर रखता है) अरे, बोलता नहीं ?

द०—मैं अभी आया हूँ, खुदावन्द !

स०—जाकर गुलनारको भेज ।

[गुल्नार डरती हुई प्रवेश करती है।]

स०—गुल्न, यहाँसे अनारकी कलियोंको किसने हटाया ?

गुल्नार—मालूम नहीं हुजूर !

स०—(आँखें लालकर) सच बता ?

गु०—(डरती हुई) हुजूर !—

स०—(जोरसे) क्या हुजूर ?

(गुल्नार भयभीत नेत्रोंसे कभी नौकरको और कभी सलीमको देखती है।)

सली०—(नौकरसे) जाओ, उस दरवाजेपर। गुल्न, तुम भीतर आओ। डरो मत। बोलो।

गु०—खुदावन्द, बड़ा डर लगता है।

स०—डरकी कोई बात नहीं, बोलो।

गुल्नार—(डरसे बार बार दरवाजेकी ओर देखती हुई) हुजूर, बादशाहने नौकरोंको हुक्म दिया है बागकी सब अनारकलियाँ आगमें झोक दी गई और हुक्म हुआ है कि जो नई नई कलियाँ निकले वे भी तोड़कर नोच डाली जायँ। अफवाह सुनती हूँ कि शहरमें अनारके सब दरख्त काट डाले जायँगे।

स०—(हथेलीपर ठोड़ी रखकर) ओह ! तो गुल्न, यह सिर्फ अनारकी कलियोंपर ही चढ़ाई नहीं है। ये छोटी छोटी बूँदे किसी बड़े भारी तूफानका सकेत कर रही हैं।

गु०—खुदावन्द, शहरमे अफवाह——

स०—क्या ?

गु०—हुजूर, अनारकली——

स०—अच्छा, तुम जाओ।

[गुलनार डगमगाती हुई-सी चली जाती है। सलीम बेजार होकर इधर-उधर टहलता है। दरबानका प्रवेश।]

दरबान—हुजूर, वजीर साहब——

स०—अच्छा, ले आओ।

(सलीम सिर हिलाकर, मानो कुछ समझ गया हो, सोफेपर बैठता है। वजीर प्रवेश कर, नौकरको बाहर जानेका इशारा कर सलीमको सलाम करता है।)

अबुलफजल—शाहजादा साहब, खैरियत तो है?

स०—वजीर साहब, अपनी मेजपर रक्खी हुई अनारकलियोंकी रक्षा न कर सकनेवालेसे खैरियत पूछते है?

अ० फ०—आप जैसे तीक्ष्ण बुद्धिके लिए यह सब समझना कुछ मुश्किल न होगा।

स०—अभी तीक्ष्ण बुद्धिकी उतनी जरूरत नहीं है वजीर साहब, जितनी अधिकारकी!

अ० फ०—शाहजादा साहब, एक बात——

स०—फरमाइए।

अ० फ०—बादशाह सलामतको अनारकी कलियोंपर कुछ गुस्सा हुआ है जरूर——

स०—गरीब, भोली-भाली, कमजोर, अनार-कलियोंपर शाहशाह-का गुस्सा? वजीर साहब, यह न्याय-सगत नहीं है। उस कलीको नेस्त-नाबूद करनेके वास्ते बादशाहका कमर कसना कुछ भला नहीं लगता। उस गुस्सेकी जड़को निकाल फेंकना अलबत्ता बादशाह-के लायक काम है।

अ० फ०—हुजूर, मै कहता हूँ——

स०—अच्छा——

अ० फ०—गुलाब इस देशका फूल नहीं है। इसको मुगल बादशाह खासकर अपने बगीचेमें लगानेके वास्ते अपने मुल्कसे लाये।

स०—जी हॉं।

अ० फ०—उसमें 'पहलवी 'की कलमें तो खुद शाहशाह अकबरने मँगाई है। पहलवीसे बेहतर गुलाब और नहीं है। उसपर खास मुहब्बत है बादशाह सलामतकी, आर हुजूरकी भी। (सलीम सिर हिलाता है) जब हुजूरने 'पहलवी 'का खास बगीचा लगवाया, तो बादशाहकी खुशीका ठिकाना न रहा।

स०—जी।

अ० फ०—इसलिए, अबसे 'पहलवी' को मुगल-खानदानका चिह्न बनाना और समझना होगा।

स०—ओह!

अ० फ०—ऐसे 'पहलवी' गुलाबोंको हुजूर अपनी मेजपर उलटकर बेइज्जतीके साथ रखते है, और उसपर अनारका कलियोंसे उन्हें ढक भी देते है।

स०—(आतुरतासे) इसलिए——

अ० फ०—पहलवी गुलाब जितना बहुमूल्य है, अनारकली उतनी ही तुच्छ! अनारकली तो बारे आम मिल भी सकती है। (सलीम कुछ सोचता हुआ दूसरी तरफ देखता है। अबुलफजल रुक रुककर सलीमकी ओर देखता हुआ सावधानीसे कहता है।) इतना ही नहीं, मामूली फूलोंमें भी अनारकी कोई हस्ती नही। पहलवी गुलाब बादशाहोंका चिह्न होगा, तो अनार गुलामोंका——

स०—(अकस्मात् इधर घूमकर) वजीर साहब, यह कविताकी भाषा छोड़कर साफ साफ बातें करें। मै अनारकलीको दिलसे प्यार करता हूँ। वह गुलाम है और मै शाहजादा हूँ, तो भी मैं अपने हृदयके प्रेमाधिक्यको दिखानेके लिए ही 'पहलवी' को अनारकलीके साथ रखकर इज्जत देता हूँ। मै यह नहीं छोड़ सकता, चाहे जो हो। —अनारकली गुलाम नहीं है, वह सलीमकी प्राण है। सलीम चाहे जिस हालतमे हो अनारकलीका उसके आधेपर, नहीं-नहीं, पूरे सलीमपर अधिकार है। सलीम अनारकलीका है यह मुझे पक्का भरोसा है। उसका नतीजा चाहे जो हो, मै उसके लिए तैयार हूँ।

अ० फ०—शाहजादा साहब, शादीकी बात सोचना———

स०—वजीर साहब, आप शायर भी तो है! थोड़ी देरके लिए उस तुच्छ हृदय-हीन राजनीतिको भूल जाइए। निर्मल कवि-हृदयसे विचारकर कहिए। प्रेमकी पवित्रताको अपवित्र नीच समझना कितना पाप है! पवित्र प्रेमका अवगाहन करके भा जो हृदय उसके लिए नहीं खड़ा हो सकता, उसका नाश हो जाना ही ठीक है। जिस प्रेमके बिना यह भूमि भूमि नहीं रहती, आकाश आकाश नहीं, सृष्टि सृष्टि नहीं रहती, पचतत्त्वोंके जिस प्रेमके बिना यह शरीर शरीर नहीं रहता, जिस पवित्र बधनको तोड़ डालनेपर मनुष्य मनुष्य नहीं रहता,—सृष्टिके नीच प्राणियोंसे भी नीच हो जाता है, ऐसे पवित्र उत्कृष्ट प्रेम-बधनको मैं इन अकरुण हाथोंसे नहीं तोड़ सकता। अनारकली और सलीमके प्रेम-प्रवाहमें कोई बाधा नहीं आ सकती। यह धारा बाँधोंके ऊपरसे होकर अथवा उन्हें तोड़कर बहेगी ही,—चाहे जिस समुद्रमें जाय, पर मरुभूमिमें

विलीन हर्गिज न होगी। इसमे बाधा बनकर आनेवालोको भविष्यत्का परिणाम भी सोच लेना होगा। मेरा सकल्प यही है। (आँखें बन्द कर लेता है।)

अ० फ०—(कुछ रुककर) शाहजादा साहब, फारसी और सस्कृत-साहित्यके प्रेम-सम्बन्धी सिद्धान्त आपने एक ही दममे कह डाले।

स०—(जल्दीसे उठकर वजीरके पास जाता है। आतुरतासे—) वजीर साहब, आप कवि हैं, आपके पास हृदय है। इधर आइए, (हाथ पकड़कर कक्षके बीचमें ले जाता है और दरवाजेकी ओर अँगुलीसे सकेत करता हुआ कहता है, मानो एक-एक शब्दका अनुभव कर रहा हो—) इस जीवनमे सबसे पहले अनारकलीका प्रवेश इसी द्वारसे हुआ। चकित होकर सलीमने देखा उसका वह सौन्दर्य, वह अबोधता, मुग्धता,—अनारकलीकी वह भगिमा, वह सुकुमार शरीर, वक्ष स्थलपर विकसित यौवनका वह रेखा, पतला कमरका बल खाना, मोतीमे आबकी तरह वह मुखका लावण्य,—ओह! वह अमृत क्षण! वजीर साहब, ऐसी कोई कला नहीं जो मुझे व्याकुल न करती हो। सगीत, कविता, चित्र,—सबमे अनारकलीकी छाया ही———वजीर साहब, मे क्या बताऊँ, कहाँ तक वर्णन करूँ, इसका कोई अन्त नही। (आँखे बन्दकर सोफेपर लेट जाता है।)

अ० फ०—(रुककर, धीरेसे) शाहजादा साहब, प्रमोत्फुल्ल आपके हृदयसे निकले हुए उद्गारोंको सुनकर चकित है यह कवि अबुल-फजल ———

स०—(हिलता है, आँखे खोलता है, फिर भौंहें टेढ़ी करके

कहता है—) अच्छा, तो अब राजनीति-विशारद वजीर साहब बोलेंगे शायद !

अ० फ०—(सिर नीचा करके) जी

स०—वजीर साहब, प्रेम-विहीन साम्राज्य मेरी अभिलाषाकी वस्तु नहीं।

अ० फ०—किन्तु, एक गुलामसे शाहजादेकी शादी ! इसको रिआया कभी पसन्द न करेगी।

स०—क्या? रिआयाको क्या अधिकार है? मेरे सुख-दुखका, मेरे अन्तःकरणके विधानका निर्णय करनेवाली प्रजा कौन होती है? क्या मैं रिआयाका गुलाम हूँ? क्या राजकुमारका हृदय पत्थरका बना होता है? क्या उसके हृदयमें उष्ण रक्त-धारा प्रवाहित नहीं होती? क्या रिआया यह नहीं जानती?

अ० फ०—जरा आपको सोचकर देखना चाहिए। हिन्दू-मुसलमानोंके विरोधको मिटाने और मुल्कको सुखी बनानेके वास्ते ही शाहशाहने आमेरकी राजपुत्रीसे विवाह करनेका साहस किया था। इससे अभी तक मुगलों और राजपूतोंमें कुछ लोग उग्र रूप धारण किये है। ऐसी हालतमें आप गुलाम लड़कीसे शादी करेंगे, तो———

स०—यह सब सोच करके ही मैंने यह इरादा पक्का किया है। मुसलमानी मूर्खताको छोड़कर तथा हिन्दू स्त्रीको पत्नी-रूपमें स्वीकार कर मेरे पिताने भावी भारतके लिए नवीन मार्ग प्रशस्त किया है,—नूतन भ्रातृत्वकी सृष्टि की है। वैसे ही हिन्दू स्त्रियोंकी धर्मान्धताको छोड़ एक विधर्मी मुगल पतिपर भी सहज पति-भक्ति और प्रेम

रखकर मेरी माताने यह साबित कर दिया है कि पवित्र प्रेममे धर्मका कोई स्थान नहीं,—वह कोई रुकावट नहीं डाल सकता। हिन्दू-मुसलमान-सम्मेलन, अकबर और आमेरा रानीके प्रेमका फल,—'सलीम' मैं जिस अपूर्व प्रेम-साम्राज्यकी सृष्टि करने जा रहा हूँ, उसमे बादशाह और गुलामका भी कोई फर्क न होगा। विश्व-भ्रातृत्व, प्रेम और समानताकी स्थापना होगी। वजीर साहब, आप पिताजीसे कहिए। मैंने प्रकट रूपसे अनारकलीसे विवाह करनेका निश्चय किया है। अब इसमे कुछ भी बाधा नही डाली जा सकती। चाहे उसका नतीजा कुछ भी हो। (रुककर, धीरेसे) आप इसी तरह उनसे कहिए, मैं आपके कवि-हृदयकी तारीफ करूँगा।

अ० फ०—जनाब, आपने बहुत खूबीसे अबुलफजलके दो हिस्से कर दिये। न्याय, सरलता, मुग्धता और कोमलता-प्रधान कवि तथा साम्राज्यकी सावधानीसे रक्षा करने और बादशाहको सलाह देनेवाले राजनीतिज्ञमे झगड़ा खड़ा कर दिया है। इस झगड़ेको मिटाकर मै कोई फैसला नहीं दे सकता। बादशाहसे कहूँगा।

स०—मगर मेरे सकल्पमे परिवर्तन नहीं हो सकता, यह निश्चित जानिए। तो अब———

(मेजके पास जाकर अनारकलीके दलोका अतृप्त भावसे उठाकर ऊपरकी ओर मुँह कर लेता है। सजल नेत्रोंसे उन दलोंका देखता है। अबुलफजल यह सब गौरसे देखता हुआ जाता है।)

[पर्दा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

[दोपहर। अकबरका मंत्रणा गृह। अकबर इधर उधर टहल रहा है। अबुलफजल खड़ा है।]

अकबर—अबुल !

अबुलफजल—जहाँपनाह !

अक०—मामूली मानवताको निगल जानेवाला यह राज धर्म कैसा है ?

अ० फ०—इस समस्याका हल होना कठिन है।

अक०—अबुल, आमेरकी राजकुमारीसे विवाह करते समय भी मेरा मन इतने पशोपशमे न पड़ा था। कैसे इसका समाधान होगा ? कुछ समझमे नहा आता। ओह ! यह राज धर्म बड़ा ही दारुण है। इससे अच्छे वे मजदूर है, जो सहज मानवताका विकास कर जीते हैं।

अ० फ०—अगर, अनार और शाहजादेकी शादीकी मजूरी दे दी जाय तो ?

अक०—यह कैसे होगा ? इधर मुगल राजपूतानीसे शादी करनेके कारण ही मेरी निन्दा करते है, विरोध भी करते——पर इसे भी कोई राजनीतिक दाँव समझकर चुप है। उधर वशाभिमानी वीर राजपूत लोग बिहारीमलपर राजपूत-कन्याका मुगलोके हाथ सौपनेके कारण दाँत पीस रहे हैं। मेरे द्वारा चलाये गये सुधार ही जब समाजमें अभी तक काफी हलचल मचाये हुए है, तब अगर उस हालतमें मैं शाहजादा और एक गुलाम लड़कीकी शादीकी मजूरी दे दूँ, तो मुल्कमे क्या होगा, तुम यह सोच सकते हो। चाहे वह प्रेमकी प्रतिमा हो, चाहे अपूर्व सुन्दरी हो, चाहे अबोध सरला हो, परन्तु

गुलाम बालिकासे विवाह करनेवाले राजकुमारको इस मुल्कमे कोई मान नहीं सकता। इतना ही नहीं, लोग यह भी कलक लगायेगे कि अकबरके सुधारोंका यही विषम परिणाम हुआ। मुगल-राजपूतके सम्मेलनसे यह नीच जाति पैदा हुई। सलीम और अनारकलीके सम्बन्धको हृदय स्वीकार करता है,—पर मस्तिष्क नहीं।

अ० फ०—मानव-जीवनमे इन दो वस्तुओने ही चमक ला दी है जहाँपनाह! एकका सम्बन्ध हृदयसे है और दूसरीका मेवासे। इन दोनोमे जब समन्वय हो जायगा, तभी मानवता उच्च स्थानपर विराजमान होगी। इन दोनोमे जबतक विरोध रहेगा, तब तक पशुको देखकर भी मानवको ईर्ष्या करनी पड़ेगी।

अक०—इस समस्याको तुमने बहुत अच्छे ढगसे सुलझाया है। प्रेमकी उत्कृष्टताका स्वाद जाननेवाला अकबरका हृदय अनार-सलीमके पवित्र प्रेमको पूज्य भावसे स्वीकार करता है, परतु, राजनीतिक नैपुण्यको अनुभवोद्वारा प्राप्त करनेवाला अकबरका मस्तिष्क, उनके विवाहको स्वीकार नहीं कर सकता।

अ० फ०—जी हाँ, सच्चा विवेक मस्तिष्कसे सबध रखता है अथवा हृदयसे, यह अभी तक हल नही हुआ। हृदयको शून्य बनाकर मेवा-शक्तिको पूर्ण विकसित करनेवाले शकराचार्य आदर्श हैं या अपने हृदयको मानव ज्ञान और ऐश्वर्यकी खान बनानेवाले बुद्ध?—इन दुविधाओके बीच हमें नहीं पड़ना चाहिए। जो इसमें आ जाते है, उन्हे किसी महानाशकी तरफ मुड़ना हा पड़ता है। यह समस्या ही मानव-चरित्रको जटिल और दारुण बना रही है।

अक०—अबुल, मैं किसी भी निर्णयपर नहीं पहुँच रहा हूँ।

दरबान—(प्रवेश कर) जहाँपनाह, अनारकली—

अक०—उसे अकेली ही यहाँ ले आओ।

(अनारकलीका प्रवेश, दीनतासे सिर झुका, सलाम कर खड़ी होती है। अकबर कुछ भी नहीं बोल सकनेके कारण इधर उधर टहलने लगते हैं।)

अ० फ०—अनारकली, तुम यहाँ किस लिए बुलाई गई हो,—मालूम है ?

अनार०—नहीं जानती, वजार साहब !

अक०—अनारकली, (पास आकर उसकी ओर देखता है, फिर लौट जाता है। पुन एक ठढी सॉस ले पास आकर कहता है—) अनारकली, बादशाहतके काम बड़े कठिन हैं। कभी कभी उसे मानवताके भी विरुद्ध—

अनार०—खुदावन्द !

अक०—(इधर-उधर टहलता हुआ) अनार, जानती हो, अकबरकी बादशाहत कहाँ है ? राजाओके सामने, प्रजाकी दृष्टिमें बादशाहत हीरेके समान है, इसमें ऑखोंमे चकाचौंध पैदा करनेवाली चमक है,—इतना ही नही, हीरेकी कठोरता भी है। फिर भी, अकबर पाषाणवत् कठोर बादशाह ही नहीं है, वह मनुष्य भी है। बे-ताजका अकबर तुम्हारे प्रेमका कायल है।—यह सब होते हुए भी तुम्हे अपना निर्णय सुनाता हूॅ। सलीमके साथ तुम्हारे प्रेमकी जो वृद्धि हो रही है, उसे मुझे कठोरतासे रोकना ही पड़ेगा। अब तुम सलीमको नहीं देख सकतीं। अन्तमे यह भी कहनेको लाचार हूँ कि प्रियतमका दर्शन ही तुम्हारा प्राण-घातक होगा। (सोफेपर बैठ जाता है।)

अ० फ०—अनारकली, दुनियामे इन्साफ नहीं है। समाज-द्वारा निर्मित ऊँच और नीचके भेदको न माननेसे समाज कदापि क्षमा नहीं करता,—चाहे वह व्यक्ति बड़ेसे बड़ा हो या छोटेसे छोटा।

अनार०—वजीर साहब, मुझे कुछ नहीं माॡम पड़ता।

अक०—(शासनके ढगसे) तुम सलीमसे प्रेम नहीं कर सकतीं।

अनार०—खुदावद, जहाँपनाहके हुक्मके खिलाफ मै चूँ नहीं कर सकती। मै शाहजादासे प्रेम नही करूँगी,—अगर यह बात मेरी ताकतसे बाहर न हो। जहाँपनाह, मै जान बूझ कर उनसे प्रेम नहीं करती। मै खुद ही बहुत डर रही हूँ। कहाँ शाहजादा और कहाँ यह गुलाम? जहाँपनाह, मुझे बचाइए। कितना ही रोकती हूँ, पर दिल रुकता नहीं है। गुलाम होनेके कारण बराबर दूसरोंके ही अधीन रही, इसलिए, शायद अपनेको वशमें रखनेकी ताकत मुझमें नहीं।

अ० फ०—आह!—अच्छा, इसके वास्ते कोशिश करोगी?

अनार०—वजीर साहब, मै कुछ ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं हू। माफ कीजिए, मै हुजूरके सामने ठीकसे कहना चाहती हूँ पर कह नहीं पाती हूँ। हिमालय पार कर आते समय एक ऊँची चोटीसे उतर रही थी। बगलमे झाँककर देखा, तो बहुत गहरा खाई देख पड़ी। उसकी गहराई बहुत भयकर थी। कलेजा काँप गया, मै घबरा गई, लेकिन उस गहराईने मेरे थरथर काँपते हुए हृदयको खींचना शुरू किया। उस आकर्षणसे अपनेको न रोक ही सकी और न कूद ही सकी। पगलकी तरह चिल्ला उठी—'कूदूँगी कूदूँगी!' तब मेरी माँ आँखोपर पट्टी बाँधकर मुझे धीरेसे नीचे उतार लाई। सच कहती हूँ, वजीर साहब, शाहजादाको देखनेपर मेरी वही हालत हो जाती है।

(अकबरके पैरोंके पास घुटने टेककर रोती हुई) खुदावन्द, माफ करें। मै अपनेको रोक नहीं सकती हूँ। जब तक उनकी नजरके सामने, उनकी बगलमे, खड़ी रहती हूँ, तब तक न मालूम मैं क्या हो जाती हूँ। और उनसे अलग होते ही मालूम पड़ता है, जैसे मेरे अन्दर सब-कुछ नष्ट हो गया है,—मैं शून्य सी हो जाती हूँ। मैं छिपा नहीं सकती, झूठ भी नहीं बोल सकती, सच कहती हूँ, मै उनसे प्रेम किये बिना नहीं रह सकती, जहॉपनाह, मुझे मरवा डालिए, मैं ऐसे नहीं जी सकती———

(सिसक सिसककर रोती है। अकबर ऑखें बन्द कर लेता है। अबुलफजल दो मिनट तक निश्चेष्ट रहते हैं। अकबर बहुत इज्जतके साथ अनारकी बाँह पकड़कर उठाते हैं।)

अक०—बेटी, तुम्हारा प्रेम पवित्र है। ओह, इतने सरल हृदयको दुःख देकर, ऐसे पवित्र प्रेमको चोट पहुँचाकर, मै कुछ भी निर्णय नही कर सकता! (रुककर, अनारकी ठुड्ढी पकड़कर) अनार, मुझे दुःख हो रहा है कि मै भी गुलाम क्यो न हुआ? आह! वैसा होता तो आज तुम्हे गर्वसे और प्रेमसे पुत्र-वधूके रूपमे ग्रहण कर सकता। अनार, ससुरकी इस बादशाहतको———

अनार०—जहाँपनाह! जहाँपनाह! बस, बस, अब मुझे जिन्दगी नही चाहिए,—अब मै जीना पसन्द नहीं करती।

(जोरसे रोने लगती है। अबुलफजल इशारा करते हैं। दरबान अनारकलीको सहारा देकर ले जाता है। थोड़ी देर तक निस्तब्धता।)

अक०—(लम्बी सॉस लेकर) अबुल!

अ० फ०—हुजूर, इस जीवनमें यह महायोग है। अभी मैं मामूली दुनियामें नहीं हूँ। विश्व-तलमें प्रज्वलित बडवाग्निके

प्रकाशमें मैं अमूल्य रत्नोको देख रहा हूँ। बड़वाग्निकी इस ज्वालाको, और तरगोके इस सक्षोभको मेरा मस्तिष्क नहीं सह सकता है। हृदयमें इस धू धूकर चलनेवाले तूफानके सामने विश्वको कम्पायमान करनेवाले बाहरी तूफानकी कोई हस्ती नहीं। ओह!

अक०—अबुल, मैं कुछ भी निर्णय नहीं कर सकता। खाक है यह बादशाहत! यदि इच्छित वस्तुको प्राप्त न होने देनेवाली गुलामी अनारकलीका अभाग्य है, तो शुद्ध निष्पक्ष अन्त करणसे निकलनेवाले न्याय विचारका अनुसरण न करने देनेवाली साम्राज्य-लोलुपताकी गुलामी मेरा अभाग्य है। अबुल, 'परिषत्' का फैसला मैं आँख मूँदकर मान लूँगा। बस। मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है।

(तेजीसे उठकर प्रस्थान)

[पर्दा गिरता है]

तीसरा दृश्य

[सायकाल। छह फीट ऊँची ईंटोकी दीवार। बिजलीकी चमककी तरह लपककर सलीम उस दीवारपर गिर पड़ता है। दोनो हाथोंको फैलाता है, फिर दीवारको छातीसे सटाकर खूब जोरसे रोने लगता है। पागलोंकी तरह हृदयको ठोंकता हुआ—]

सलीम०—अनार! अनार!! अनार!!! (मिट्टीके पुतलेकी तरह दीवारपर झुक जाता है। निश्चेष्ट हो जाता है। नौकर दौड़ा हुआ आता है। देखकर स्तम्भित रह जाता है। सलीम एकाएक उठकर पागलोंकी तरह दीवारकी ईंट उखाड़नेकी चेष्टा करता हुआ) अनार! अनार!! अब भी जिन्दा हो? इस प्रेमने अभी तक तुम्हारे सुकुमार प्राणोको बाँध रक्खा है?

नौकर— खुदावन्द !

सलीम—दीवारमेंसे कण्ठ-ध्वनि आ रही है,—सुना ?

नौ०—(डरते हुए) हुजूरको वैसा मालूम हुआ। अब तक जिन्दा रहना असम्भव है।

स०—असभव ? प्रेमके लिए कुछ असम्भव नहीं है। देखो, भीतर प्राण तड़फड़ा रहा है।

नौ०—उसकी अन्तिम साँस तक जल्लाद लोग यहीं थे हुजूर! बादशाहका ऐसा ही हुक्म था।

स०—आह ! (शरीर और आँखें हिलती-सी हैं। उसाँसें लेता है। कुछ सोचता हुआ दीवारकी ओर देखकर) अनार ! (कटार कलेजेसे भिड़ाता है। नौकर घबराकर हाथ उठाता है।) तुम डरो मत, मैं आत्महत्या नहीं करूँगा। (कलेजेपरका अँगरखा हटाता है। कटारकी नोकसे थोड़ा चमड़ा चीरता है। कटारकी नोकमें रक्तके कुछ कण लग जाते हैं।)

नौ०—(घबराकर) हुजूर !

स०—कुछ डर नहीं है। यह कटार लेकर शाहशाहके पास जाओ और कहो कि अनारकली जिस दीवारमे चुनी गई, उसके पास खड़े होकर सलीमने यह सबक सीखा है—'साम्राज्य ही हमारी नामवरी है,—और रिआया ही हमारी तकलीफे।' हममेंसे आज सहज मानवताका नाश हो गया है। यह अनारकलीका शाप है। —कहो कि अनारकली दीवारमें दम घुट-घुटकर नहीं मरी, बल्कि, अकबरके पुत्रने इस कटारसे उसकी हत्या की है। अब इन रक्त-बिंदुओंका चुम्बन कर नाचनेको कहो बादशाहसे !

(कटार देकर) यह खून अनारकलीका है, जो सलीमके कलेजेसे बहा है । यह रक्तकी लालिमा अनारकलीका भयकर शाप है, सलीमके प्रेमका कभी न सूखनेवाला दाग है । पिता-पुत्रके सहज प्रेमको नाश कर दिया है इस खूनके दागने । हम मनुष्य नहीं हैं । सहज, सरल हृदयमे हमे जीना न चाहिए । आगे आनेवाले शाहजादोंके सामने अकबरने यही सबक रक्खा है । सरल हृदया अनारकलीका यह मरण ही,—एक अनाथ गुलाम लड़कीकी जबरदस्ती मौत ही,—मुगल-खानदानके लिए शाप है । अनारकलीका यह शाप मुगल-वशपर अवश्य पड़ेगा । बादशाह और गुलाममे समत्व देखनेवाली एक दृष्टि है । उस न्याय नेत्रने अनारकलीके शापको मुगल-वशकी भावी भाग्य रेखाके रूपमे स्वीकार किया है । जाओ, बादशाहसे कहो कि अनारकलीका अन्त, और मुगल-वशकी भावी दशाके चिह्न-स्वरूप मेरे प्रेम रक्तसे भीगी हुई इस कटारकी कब्र, अपने सिंहासनके आगे न्याय-शालामे सोनेके गारे और सगमरमर पत्थरसे बनवा ले । (पीठ घूमकर) इस पवित्र प्रेम-देशमे मैं अकेला ही रहूँगा । इधर कोई आने न पावे । जाओ । (नौकर धीरेसे चल जाता है । सलीम नमाजकी तरह झुककर दीवारके पास घुटने टेक कर हाथ ऊपर उठाता है । दीवारपर सिर रखकर) अनार अनार ! ! अनार ! ! !

(उच्छ्वासकी तरगोके साथ सिसक सिसककर रोता है ।)

[पर्दा गिरता है ।]

समाप्त